उच्छ्वास

श्रीमैथिलीशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

पथमावृत्ति
२०१७ वि०

मूल्य
रुपया २.५०

श्री सुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य-मुद्रण, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित
तथा साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा प्रकाशित ।

श्रीराम

निवेदन

यह मेरे बहुकालिक उच्छ्वासों का संग्रह है। अपनों के स्मारक के रूप में इनका संकलन स्वाभाविक हो सकता है। परन्तु इनके प्रकाशन के विषय में क्या कहा जाय। हाहाकार अथवा चीत्कार प्रायः अमर्यादित होते हैं। जिनसे उनका सीधा सम्बन्ध नहीं होता, उन्हें वे कर्ण-कठोर ही लग सकते हैं।

एक बार हिन्दी के एक प्रतिष्ठित लेखक ने अपने पुत्र-शोक पर एक लम्बी कविता लिखी और उसे 'सरस्वती' में प्रकाशित कराने के लिए भेजा। सम्पादक पूज्य द्विवेदीजी ने उसे नहीं छापा। उनका कहना था, उनके शोक मे एक स्वजन के नाते हम दुःखित हैं। परन्तु सरस्वती के पाठकों को इससे क्या? हाँ, उनकी कविता पढ़कर पढ़ने वालों को भी वैसी अनुभूति हो तो दूसरी बात है। 'सरस्वती' हमारे हाथ में है तो क्या हम उसमें अपने परिवार के लोगों के चित्र देने लगें?

बात ठीक ही है। तथापि इस संग्रह में दस-बीस पंक्तियाँ भी ऐसी हों, जिनसे सहृदयों की सहानुभूति की आशा की जाय, तो क्या वह अनुचित है ?

इसके लिए एक आधार भी है। संकलित रचनाओं में 'नक्षत्र-निपात' सबसे पहले लिखी गई थी। ४६-४७ वर्ष पूर्व सं० १९७१ में सियारामशरण के एक शिशु के न रहने पर। हिन्दी साहित्य के एक इतिहास में इसका और 'पुष्पाञ्जलि' का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार 'सान्त्वना' की अनेक पंक्तियों से भी कुछ समान दुःखी बन्धुओं को थोड़ा बहुत समाधान मिला और उन्होंने उसकी पाण्डुलिपि देखने की इच्छा की। मेरे समालोचक श्रीकमलाकान्तजी पाठक ने भी यहाँ उसे देखा और अपने ग्रन्थ में सदयता पूर्वक उसकी चर्चा की। अस्तु।

'पुष्पांजलि' भी सियारामशरण के ही एक किशोर बालक पुरुषोत्तम की सहसा मृत्यु पर सं० १९७५ में लिखी गई थी। 'पलायित,' 'पुकार,' 'भग्न तन्त्र' और 'कीर' नाम की रचनाएँ मेरे सबसे छोटे भाई चारुशीलाशरण के पुत्र रामेश्वर की मृत्यु पर संवत् १९८३ में लिखी गई थीं। यह बच्चा अधिकतर मेरे ही पास रहता था। उसकी मृत्यु पर मेरी कातरता रूढ़-सी हो उठी थी। 'राम !' शीर्षक रचना भी इन्हीं प्रसंगों से संबद्ध है। 'निरवलम्ब' मैंने अपने कक्का के देहान्त पर अपनी असहाय स्थिति के कारण संवत् १९७८ में लिखी थी। 'चयन' सं० १९७७ में एक मित्र के चिरवियोग पर

और 'समाधि' अजमेरी के निधन पर सं० १९९४ वि० में लिखी गई थी। वे भी मेरे एक कुटुम्बी जैसे थे। 'चक्रवाकी' सं० १९९२ में एक समीपस्थ युवक के कारुणिक अन्त पर उसकी विधवा से सम्बन्धित है। शेष रचनाएँ मेरे दो पुत्र सुदर्शन और सुमन्त्र के मरण से उत्पन्न विभिन्न मनःस्थितियों में लिखी गई हैं। इसी प्रकरण में व्रज भाषा में भी मैंने एक सवैया छन्द लिखा था, वह भी एक अलग पृष्ठ पर रख दिया गया है। ये सब सं० १९९२ की रचनाएँ हैं।

अनेक रचनाएँ इधर मिल नहीं रही थीं। एक दिन अकस्मात् पेंसिल से पीले कागज पर पहली बार की लिखी हुई हाथ आ गईं। तब यह निश्चय किया गया कि ऐसी सब रचनाओं को एकत्र कर लिया जाय। प्रकाशन हो वा न हो। किन्तु सियारामशरण की धारणा है, लेखनी पर लेखक ही का अधिकार नहीं। वह व्यष्टि की नहीं, समष्टि की है। 'द्वापर' की पूर्वपीठिका के रूप में भी इनका प्रकाशन वे उचित समझते हैं।

चिरगाँव
मार्गशीर्ष, २०१७

मैथिलीशरण

अयि लेखनि ! सबके हृदयों से है तेरा वर्त्ताव,
प्रकट न हों फिर उनपर कैसे तेरे भी सब भाव ?
सदय हृदय आत्मीय जनों से किसका कौन दुराव ?
स्नेह-लेप ही क्या न पायँगे तेरे उर के घाव ?

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्
विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्
यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।

—कालिदास

सबकी गति सौं अपनी गति है,
मति मूढ़ भई मन आनत ना।
बहु रूपमयी वह मींचु नटी
हम देखत हैं पहँचानत ना।
जन जात खिंचे कितके कित हैं
जब लों हरिजू, तुम तानत ना।
अपनों अपनों सपनों सब है
जिउ जानत है तउ मानत ना!

अनुक्रमणिका

श्रीगणेशाय नमः

उच्छ्वास

राम !

राम ! किसीपर वाम न हो, हमपर हो जो तुम ,
हमपर जो अनुकूल हुए थे, सबपर हो तुम ।
भगवन्, वह जो हमें दिया था, सबको दो तुम ,
जो हमसे ले लिया, किसीसे उसे न लो तुम ।

पावें वह धन सभी जिसे हमने पाया था ,
अकस्मात ही हाथ हमारे वह आया था ।
रख न सके हम उसे, किन्तु सब जन रख पावें ,
मना रहे हैं यही, भला क्या और मनावें ।

राम !

रख न सके हा ! रख सके न हम उसे अभागे,
सोये इतने शीघ्र भाग्य तो थे क्यों जागे ?
सब कुछ उसका रहा असाधारण, इस कारण,
होता कैसे भला निधन भी फिर साधारण ?

सब कहते हैं सोच वृथा है, बस क्या इसमें,
पर उसमें क्या सोच हमारा बस हो जिसमें।
यही सोच है हाय ! कि कुछ बस नहीं हमारा,
विवश मृत्यु की ओर जा रही जीवन-धारा।

रख न सके हम उसे यत्न आदर करके भी,
जी न भरा हम देख रहे थे जी भरके भी।
पा सकते हैं नहीं कदाचित् अब मरके भी,
रह सकते हा ! आज कहीं धीरज धरके भी।

हम उसके अनुरूप उसे कुछ दे न सके थे,
लेना जैसे उसे चाहिए ले न सके थे।
असन्तोष कुछ नहीं दिखाया उसने तब भी,
रहा सदा सानन्द, रहे हे प्रभुवर, अब भी।
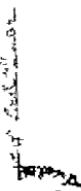
आडम्बर की उसे अपेक्षा ही क्या होती,
सहज सजल है, नहीं चाहता कुन्दन मोती।
पहना दें हम स्वर्ण-सूत्र वा कोई धागा,
मोती का सौन्दर्य स्वयं उसमें है जागा।

हमने कुछ भी उसे दिया हो वा न दिया हो,
कुछ भी उसके योग्य किया हो वा न किया हो।
किन्तु प्रेम-सम्मान दिया था उसको इतना,
दे सकता है कहीं किसीको कोई जितना।

फिर भी हम रख सके न उसको, रहा नहीं वह,
रहे जहाँ भी, सुखी सर्वदा रहे वहीं वह।
हम उसको चिर काल आप ही याद करेंगे,
प्यार करेंगे किन्तु न मोह प्रमाद करेंगे।

सब कहते हैं उसे भूल ही जाओ अब तो,
पर कैसे, यह हमें बता दे कोई तब तो।
कैसा है वह ज्ञान, भुलाता है जो हमको?
कैसा यह चैतन्य, सुलाता है जो हमको?

राम !

सब कहते हैं, उचित नहीं धीरज - धन खोना,
जो होना था हुआ, वृथा अब रोना - धोना।
पर धीरज खोगया आप, क्या हमने खोया ?
रोईं आँखें आप, हाथ हमने है धोया !

जो होना था हुआ, किन्तु यह होना कैसा ?
अपने हाथों आप काल का अनियम ऐसा !
यदि अनहोनी कहें इसे तो रोना किसका ?
यही खेद है, भेद कभी कुछ खुला न इसका।

सब कहते हैं कि वह छली था, छलने आया,
दिखा गया निज हाव-भाव वह मोहक माया।
पर हम कैसे कहें कि वह कोई वंचक था,
कौशल तो था बहुत, न उसमें छल रंचक था।

वह था कोई तपोभ्रष्ट जो भटक गया था,
पाकर यहाँ ममत्व-मान कुछ अटक गया था।
हुआ सजग हो पुनः उच्च पद का अधिकारी,
पर हम कैसे सहें हाय ! यह विरह विकारी।

राम !

यह घर उसके योग्य न था तो क्यों वह आया ?
जिसे न हम रख सके उसे क्यों हमने पाया ?
इसका उत्तर न वह न हम कुछ दे सकते हैं,
ऐसे भी हैं कौन इसे जो ले सकते हैं।

छिन्न-भिन्न हो गया एक यह अंग हमारा,
वह था सुख का स्वप्न हुआ जो भंग हमारा।
फीका उसके बिना आज सब रंग हमारा,
कैसे यात्रा बने, कहाँ वह संग हमारा।

चला गया वह अहो ! भाग्य का भरम हमारा,
सबके आगे बहे आज करुणा की धारा,
यह कहने में हमें नहीं लज्जा अब कोई,
कि हम दीन हैं दया करो हमपर सब कोई।

नक्षत्र-निपात

जो स्वजनों के बीच चमकता था अभी
आशा पूर्वक जिसे देखते थे सभी,
होने को था अभी बहुत कुछ जो बड़ा
नभ से वह नक्षत्र अचानक खस पड़ा ?
निशि का सारा शान्त भाव हत हो गया,
नभ के उर का एक रत्न-सा खो गया।
आभा उसके अमल अन्तिमालोक की
रेखा-सी कर गई हृदय पर शोक की।
सारे तारे उसे देखते ही रहे,
ठंडी आहें खिंची और आँसू बहे।
किन्तु बचा पाया न उसे वह इन्दु भी,
काम न आये हाय ! अमृत के विन्दु भी।
ऐसा ही कुछ धरा-धाम का हाल है,
सचमुच निष्ठुर काल महा विकराल है।

पुष्पाञ्जलि

उठती है कैसी हाय ! हूल ,
मेरे आँगन का एक फूल !
सौभाग्य भाव से मिला हुआ ,
श्वासोच्छ्वासों से हिला हुआ ,
निज वंश-वृक्ष में खिला हुआ ,
झड़ पड़ा अचानक झूल-झूल ।
मेरे आँगन का एक फूल !

ऊषा ने अपना उदय किया ,
दीपक ने निज निर्वाण लिया ,
मारुत ने जग को जगा दिया ,
देखा कि दे गया हृदय-शूल ,
मेरे आँगन का एक फूल !

वह रूप कहाँ वह रंग कहाँ ?
हिलने-डुलने का ढंग कहाँ ?
हो गया हरे ! रस-भंग यहाँ।
उड़ गई गन्ध की हाय धूल !
मेरे आँगन का एक फूल !

करता समीर था साँय-साँय,
लगता था भूतल भाँय-भाँय,
बकता था मैं भी आँय-बाँय,
दिखलाई देता था न कूल।
मेरे आँगन का एक फूल !

आये इतने में श्री-निवास,
था उसी फूल-सा मधुर हास !
बोले, उसमें था, स्वर्ग वास,
वह गया सूक्ष्म था, रहा स्थूल।
मेरे आँगन का एक फूल !

बोला तब मैं हे राजराज !
क्या है इसके अतिरिक्त आज,
जिसकी अंजलि दूँ तुम्हें साज ?
लो इसको भी सब दोष भूल।
मेरे आँगन का एक फूल !

पलायित

अरे, न लौटेगा क्या अब भी ओ दुरन्त दुर्वार !
जा, न लौट, इठलाता क्यों है तू उद्धत अनुदार !
यह सारा संसार नहीं है मेरा ही आगार,
तेरे बिना शून्य होकर जो भरे शोक चीत्कार।

जाने भी दे जगत, इसे तू गये असंख्य अपार,
केवल खुला रहे आने का तेरा ऊँचा द्वार।

अरे, लौट आ, अरे लौट आ, न जा छोड़कर छार,
आ आ, तुझे बनाऊँ फिर मैं अपने उर का हार।
जाना ही है तो यों मत जा झटपट पट फटकार,
लेता जा, लेता जा मुझसे अपना मोहाचार।

तू रहता तो इसको भी मैं सहता सेंक विचार,
तेरे बिना प्यार है तेरा मेरा हृदयांगार !

पलायित

रुके न मेरे हाथ देखकर तुझे सरस सुकुमार,
लगा लिया छाती से मैंने पुलक पोंछ-पुचकार।
पर तू कहाँ चला ओ निर्दय, करके वहाँ प्रहार,
अन्धकार छा गया सामने, उपजा विषम विकार।

छला गया मैं तुझसे तब भी उमड़ रहा है प्यार,
खोल गया तू धक्का देकर करुणा का भाण्डार!

भाग गया तू, पकड़ न पाया तुझको यह संसार,
पर तेरे चिह्नों से अंकित है मेरा घर-बार।
न तो देख सकता हूँ मैं उन चिह्नों को इस बार,
और न दृष्टि हटा सकता हूँ उनसे किसी प्रकार!

दो विरुद्ध भावों में पड़कर जीना भी है भार,
ऊब रहा हूँ डूब रहा हूँ, आकर मुझे उबार।

अरे लौट आ, अरे लौट आ दूँगा मैं उपहार,
कह दे, तुझे चाहिए कितने क्या वस्त्रालंकार।
बिककर भी दूँगा मैं तुझको साज-बाज, शृंगार,
लौट छेड़ नन्हीं-सी अपनी इस तन्त्री के तार।

हाय! लुप्त हो गई गूँजकर वह कोमल झंकार,
सुन पड़ती है अब यह भीषण मरण-चाप-टंकार।

गथित

यह घर है या वन, तू मेरी सुनता नहीं पुकार,
बच्चे, तेरे पद कच्चे हैं, थक न जाय तू हार।
मिला कहाँ से तुझको इतना वायु, वेग, विस्तार,
व्यर्थ दौड़ता हूँ मैं पीछे दोनों हाथ पसार।
ठहर ठहर, यह पथ है तेरा अथवा पारावार
कौन सँभाल करेगा तेरी, पहुँचावेगा पार
देख नहीं सकता मैं तुझको, तू ही मुझे निहार,
बता, कहाँ किसकी गोदी में तू कर रहा विहार ?
नहीं देखने देती मुझको इन आँखों की धार,
कहाँ किधर तेरे लघु चंचल चरणों के आकार।
अन्धा-सा दौड़ूँ तब क्यों मैं करूँ प्रथम उपचार
क्या जाने, तू आसपास ही छिपा न हो छविसार
देख माधुरी तेरी टपकी क्रूर काल की लार,
भूल गये उसको वे अगणित बड़े बड़े आहार।
अब तेरी चातुरी तभी है निकले उदर विदार,
करे पहाड़ फाड़कर जैसे निर्झर निज संचार!
रह रह कहना पड़े न हमको सूखा धीरज धार
तू वह चक्रव्यूह भेदकर पा न सका उद्धार

छिप न झलक देकर जीवन के नूतन आविष्कार !
क्या जाने कितने जीवों का हो तुझसे निस्तार ।
आ, मेरे अत्रास-प्रास ! मैं खोलूँ कोषागार,
मत रह मेरे छन्द ! अधूरे, रख प्रिय पद दो चार ।
मेरे बनते चित्र ! बिगड़ मत, भावों के आधार !
उठ मेरे आलाप ! मन्द्र से मध्य, मध्य से तार ।

पुकार

राम, तुम्हारा राज्य कहाँ हा !
बना जगत जंजाल यहाँ,
मरने लगे अकाल मृत्यु से
विवश हमारे बाल यहाँ।
ह्रद-ह्रद है, विषाद कालिय है,
विष फैला विकराल यहाँ,
बचा हमें तू लौट हमारे
अरे बाल-गोपाल ! कहाँ ?

पुकार

सूख न ओ मेरी आशा के
अंकुर ! ममता माया कर,
अरे, उगा है तो उठ बढ़ तू,
फूल और फल, छाया कर।
पर तू नन्दन वन के पौधे,
इस धरती पर रह न सका,
कैसे सहें बता हम, जिसका
ताप आप तू सह न सका ?

तू औरों के लिए स्वच्छ शिशु
सुघर सलौना शोभन था,
मेरे लिए प्यार के पुतले,
मधु मद भरा प्रलोभन था।
अपने लिए न जाने क्या था,
उसे समय ही बतलाता,
हे हम सबके एक खिलौने !
यदि न शीघ्र तू उठ जाता।

पुकार

तेरी सहज सरल मुद्रा पर
भाव-भंगियाँ बलि जाती,
तू तो गया किन्तु वे तेरी
बातें हैं मन में आती।
निर्मम, किसी जन्म का तूने
यदि हमसे है वैर लिया,
तो न भूल इस क्षुद्र जन्म में
हमने कितना प्यार किया।

अंकित है तू आज शून्य में
जो कि अंक में था मेरे,
इधर मधुर मुख किये उधर क्यों
पीछे हटता है रे रे!
फैलाऊँ करुणांक जहाँ मैं
रखता है तू शून्य वहीं,
हा! मेरे इन अश्रु कणों की
क्या कुछ गणना नहीं कहीं?

पुकार

आँखों में चंचलता, मुख में
मन्द-मन्द मुसकान भरी,
उतरी न थी अभी भव-जल में
तेरी लघु तनु-कमल-तरी।
हिलती-डुलती तुलती-तुलती
थिरक रही थी क्रीड़ा से,
आज किधर उड़ गई अचानक
किस प्रवाह की पीड़ा से।

किस अनन्त में उड़ा हाय! तू
ओ मेरे कर्पूर, बता,
पता नहीं कुछ हमें वहाँ का
वह है कितनी दूर, बता।
आकुल हैं ये मेरी आँखें,
ओ, इनके उपचार! कहाँ?
छाती जलती है यह मेरी,
तू हे हिम के सार! कहाँ?

पुकार

जिसके आल - वाल में मैंने
मानस का रस भरा-भरा,
सूखा तू मेरे गृह - वन का
प्यारा पौधा हरा - हरा।
कहीं जानता कि इस लोक का
वायु तुझे अनुकूल नहीं,
तो तेरी उस काट-छाँट की
करता मैं यह भूल नहीं।

झूम झूमकर आता था तू,
घूम घूमकर जाता था,
चूमा जाकर मुझसे बहुधा
मुझे चूमकर जाता था।
हिलता - डुलता देख कनौखा
कुछ आगे बढ़ जाता था,
किन्तु लौट झट हँसकर मेरे
कन्धों पर चढ़ जाता था।

पुकार

रोना ही बच्चों का बल है,
पर हँसना तेरा बल था।
अपनी इष्ट सिद्धि करने का
तुझमें अद्भुत कौशल था।
तेरी ऐसी युक्ति न थी जो
खावे कोई मेल नहीं,
बच्चे, तेरी बात टालना
था बच्चों का खेल नहीं।

कहीं चला मैं तो बोला तू—
गया नहीं मैं कभी वहाँ,
मैंने उसे नहीं देखा है,
जाते हो तुम अभी जहाँ।
बहुधा भूल अवस्था तेरी
मैंने तुझको संग लिया,
आज कहाँ तू चला अकेला,
तूने यह क्या ढंग लिया।

पुकार

सुनते देख किसीको अपना
वह गुन-गुन करके गाना
किसे भूल सकता है तेरा
मुसकाकर चुप हो जाना।
अरे, निकल आ किसी ओर से
और लिपट जा तू मुझसे,
मेरा हँसना और खेलना
जाकर चिपट गया तुझसे।

अपने दाँत दबाकर मेरी
ग्रीवा से टँग जाता था,
जिस रँग पर मेरी आँखें हों
तू उसमें रँग जाता था।
भृकुटी तनी देखता था तो
ऐसी बात बनाता था,
आ जाती थी हँसी, कौन फिर
तुझपर रोष जताता था।

पुकार

मेरे प्यारे बच्चे, मैंने
कभी कभी तुझको डाँटा,
खटक रहा है मेरे मन में
वही आज बनकर काँटा।
तू तो चलता बना, बता, अब
उसको कौन निकालेगा?
सोने देगा नहीं सहज वह
रात-रात भर सालेगा।

आ जा, स्नान-भजन-पूजन कर
खा-पीकर विश्राम करें,
चित्र देख तू, पद्य रचूँ मैं,
अपना अपना काम करें।
झूठ-मूठ मैं तार छेड़ दूँ,
बेत उठा तू दे मात्रा,
मेरी अँगुली पकड़ घूम फिर
मत कर अनजानी यात्रा।

पुकार

जो कुछ तुझे खिलाया, खाया—
जो कुछ पहनाया, पहना,
चाहा नहीं सहज ही सुन्दर
तूने कुछ गहना-बहना।
अपनों की आँखों के मोती
ले वा न ले आज प्यारे!
दे सकते हैं भला और क्या
तुझको अब वे बेचारे।

कहता था कि "चले जैं हैं हम"
सो तू सचमुच चला गया,
पर फिर "कबउँ न आहैं" यह क्यों,
कह तू किससे छला गया?
"भैया ऐसें नइँ कैग्रत, ह्याँ
बड़े तमासे हूँ हैं—सुन,"
पर थी चार बरस के बच्चे,
तेरी कैसी पक्की धुन।

पुकार

मेरे सुख - सन्तोष पड़े थे
तेरे पलक - हिंडोरों में,
मेरे मोद - विनोद बसे थे
उन नयनों की कोरों में।
आज अचल हो गये पलक वे
और नयन वे बन्द हुए,
बिगड़ गये सब छन्द आप ही
क्या मेरे आनन्द हुए?

मृत्यु न हो, यह कहीं नींद हो,
मधुर मूर्त्ति चुप सोती है,
यह है ऐसा सत्य कि जिसपर
मन में शंका होती है।
मुझे जान पड़ता है ऐसा
कि तू लौटकर आता है,
किन्तु कौन आता है जाकर,
जाता है सो जाता है।

मेरी पूर्वस्मृति - भुजंगिनी
पाकर निज मणि-तुल्य तुझे,
शान्त कुण्डली मार पड़ी थी
मार न विष के दाँत मुझे।
तेरे जाने की आहट से
गरज उठी फिर वह व्याली,
उगल उठी फिर वह विषाद-विष,
खुली मृत्यु की लट काली!

बता, मुक्त होने में तेरे
क्या कुछ दिन थे शेष यही?
कह दे, कहता था तू जैसे
बहुधा अपनी 'हुआ' वही।
हम तो यही कहेंगे, फिर भी—
आ, धर जन्म धरा पर तू,
और हमें तुझसे थीं जो जो
आशाएँ, पूरी कर तू।

अथवा सो जा हम हीनों के
दीन-मनोरथ ! तू सो जा ,
बच इस भव के सन्तापों से ,
ठंडा होता है, हो जा ।
ले इन आँखों के पानी से
हाथ हमारे धन, धो जा ,
हम जड़ नहीं रहें जो सुस्थिर ,
धीरज, तू रह वा खो जा !

प्रभुवर, यही प्रार्थना है हम
आतुर आर्त्त अधीरों की ;
नहीं याचना करते हैं हम
मोती - मानिक - हीरों की ।
'देह धरे के दण्ड' हमें दो,
दिया तुम्हींने देह हमें ,
किन्तु न दो यों कि हो तुम्हींपर
विवश कभी सन्देह हमें !

भग्न-तन्त्र

टूट गया तन्त्री का तार,
अब भी गूँज रही झंकार।
होती है क्रम-क्रम से मन्द,
उड़ी जा रही है स्वच्छन्द,
मृदुल पवन पर है मृदु भार,
अब भी गूँज रही झंकार।
किधर देखते हो अब घूर,
सुन पड़ती है दूर-सुदूर,
करती हुई शून्य को पार,
अब भी गूँज रही झंकार।

भग्न-तन्त्र

लय होगई प्रलय में लीन,
पड़ी मूर्च्छना मूर्च्छित दीन,
तजा ताल ने काल - विचार,
अब भी गूँज रही झंकार।
धम से गिरी गमक पर गाज,
कसकी मींड़ मसक कर आज,
उड़ी कणों की छिन में छार,
अब भी गूँज रही झंकार।
टूटी तान आप ही आप,
रहा विलाप, गया आलाप,
नहीं सरेगा अब यह सार,
अब भी गूँज रही झंकार।

कीर

किधर उड़ गया, बता दो वीर,
किसीने देखा मेरा कीर?
अभागा वह असहाय अनाथ,
पड़ा हो कहीं किसीके हाथ,
मुझे दे दो करुणा के साथ;
तोलकर ले लो हाटक-हीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

देह थी हरी-भरी सुकुमार,
गले में एक अरुण मणिहार,
चंचुपुट-पल्लव सहज सुढार,
गिरा पर गद्गद थे सब धीर।
किसीने देखा मेरा कीर?

कीर

आम - वन छान चुकी हूँ हाय !
कहाँ जाऊँ अब मैं असहाय ।
बता दो कोई मुझे उपाय,
करूँ क्या लेकर ये मंजीर ?
किसीने देखा मेरा कीर ?

दुःख होता है दूना हाय !
कहाँ वह एक नमूना हाय !
पड़ा है पंजर सूना हाय !
अछूती रक्खी है यह खीर,
किसीने देखा मेरा कीर ?

रहा जो खा - खाकर भी खंख,
काल वह बजा रहा है शंख,
और दुर्बल हैं उसके पंख,
एक मुट्ठी भी नहीं शरीर ।
किसीने देखा मेरा कीर ?

कीर

शून्य में गई जहाँ तक दृष्टि,
देख ली मैंने नभ की सृष्टि,
हुई सब ओर निराशा वृष्टि,
भरा इन नयनों में यह नीर।
किसीने देखा मेरा कीर ?

अँधेरा कोटर - सा पाताल,
टटोला हाथ दूर तक डाल,
न पाया वह पन्ना वह लाल,
रुँधा हा ! मेरा श्वास समीर।
किसीने देखा मेरा कीर ?

खोज डाला सब सागर - तीर,
और आगे है केवल नीर,
अगम है वह अथाह गम्भीर,
पार उड़ गया न हो बे-पीर !
किसीने देखा मेरा कीर ?

कीर

कहाँ खोजूं उसको हे राम !
तुम्हारा लेता था वह नाम ।
दिखाओ मुझको अपना धाम ,
झाड़ दो निज माया का चीर ।
किसीने देखा मेरा कीर ?

अपहरण

कितने का था कौन कहे जो माल गया है ?
इस गुदड़ी का एक अनोखा लाल गया है।
ला सकता है कौन, लूटकर काल गया है,
पहुँचा लाखों कोस भले ही हाल गया है।
यह उसी काल के हाथ है,
लौटे, लौटा दे कहीं,
उसके ऐसा निर्दय नहीं
और सदय भी है नहीं।

मन्दिर से जो मुझे प्रसाद मिला दौने में,
संशय क्या है अति मनोज्ञ उसके होने में।
किन्तु मार्ग में कौन उसे ले उड़ा टूटकर?
रोम रोम रो उठा आप ही फूट फूटकर।
तब सिरा दिया दौना अवश
मैंने नीचे कूप में,
ऊपर था उड़ता जा रहा
काग भाग्य के रूप में!

वह था अपना एक खिलौना, टूट गया है,
हाथ मलूँ मैं क्यों न हाथ से छूट गया है।
मिट्टी का था किन्तु एक सूरत थी उसकी,
मैं यह कैसे कहूँ कि क्या मूरत थी उसकी।
केवल इतना ही था नहीं,
उसमें ऐसा भाव था,
जिसका इस आकुल चित्त में
जन्म जन्म से चाव था।

अपहरण

तोड़ मृदुल वह मुकुल अभी जो नहीं खिला है,
कुटिल काल ! मधु गन्ध बता क्या तुझे मिला है ?
झड़ता पल्ला झाड़ स्वयं वह तेरे आगे,
पा जाते कुछ तृप्ति नासिका नयन अभागे।
जीवन नामक वह वस्तु है
कितनी-सी इस सृष्टि में,
उतनी भी तो करुणा नहीं
निर्मम तेरी दृष्टि में।

मिल न सके जो कहीं, खो गया वह धन जिसका,
जो फिर लौटे नहीं, गया हो वह जन जिसका ?
करो न अत्याचार उसे तुम समझाने का;
कल पाने का यत्न न हो हा ! कलपाने का।
सोकाश्रु-सलिल उमड़ा हुआ
आँखों से निकले नहीं,
तो हाय ! बाँध-सा वक्ष ही
तोड़ न डाले वह कहीं।

आया था सो गया, रहो तुम अथवा जाओ,
जो होना था हुआ, भले ही रोओ गाओ।
समझावेगा कौन, स्वयं समझो समझाओ,
तुमको सर्व-समर्थ सान्त्वना दे, तुम पाओ।
ये सब हैं ऐसे वचन जो–
कहते हैं हम-तुम—सभी,
हा ! किन्तु हमीं तुम हैं कि जो
इन्हें नहीं सुनते कभी।

रोग - शोक - सन्ताप सहन करने ही होंगे,
भव के भीषण भार वहन करने ही होंगे।
जैसे बीते काल बिता देना ही होगा,
जो कुछ देगा, दैव हमें लेना ही होगा।
जब जन्म हुआ है, मृत्यु भी
होगी निश्चय ही कभी,
होते हैं इस संसार के
कार्य नियति के वश सभी।

अपहरण

क्षण-भंगुर संसार, भरोसा है क्या इसका,
अपना ही जब नहीं और तब होगा किसका ?
है वियोग परिणाम यहाँ सबके सुयोग का,
करलें हम अभिमान भले ही क्षणिक भोग का।
जो आज यहाँ सो कल नहीं,
कल है सो परसों नहीं,
है पल पल की ही कुशलता,
चला चली है सब कहीं।

जब असार संसार बीच अवतीर्ण हुए हैं,
पहले से ही मार्ग कण्टकाकीर्ण हुए हैं।
जीवन के जंजाल मध्य जब फँसे हुए हैं,
भव - कर्दम में ग्रसे कण्ठ तक धँसे हुए हैं।
तब हम दुःखों से क्या डरें,
जैसे हो धीरज धरें।
यदि न भी धरें तो क्या करें,
कैसे पथ पूरा करें।

क्या विकास सर्वत्र नाश का सूचक हममें ?
होकर पूर्ण सुधांशु तूर्ण मिलता है तम में।
किन्तु चन्द्र तो हाय ! दृष्टि में फिर आता है,
हममें से जो गया, सदा को ही जाता है।
फिर भी अपना कुछ वश नहीं,
यह विधि का व्यापार है;
हे हृदय, धैर्य धर, शान्त हो,
मिथ्या सोच - विचार है।

है अन्तर की ओर देह का अन्तर भारी,
बाहर मायावरण पड़ा है विस्मयकारी।
कहाँ जाय, क्या करे हाय ! यह दृष्टि हमारी,
भटकेगी क्या इसी भाँति यह मारी-मारी ?
क्या कभी न अपने लक्ष्य तक
चक्षु पहुँचने पायँगे ?
बस रीते ही रह जायँगे,
गल गलकर बह जायँगे।

अपहरण

कण-कण में है कान्ति उसी हृदयस्थ कान्त की,
किन्तु मोह ने हाय! हमारी दृष्टि भ्रान्त की।
पर हम हैं जड़ जीव, कहीं यह तत्त्व समझते,
तो अशान्ति के जटिल जाल में हम न उलझते।
वह सुलझावे चाहे नहीं,
यह उसके ही हाथ है,
गति वही हमारी है यहाँ
पथ है कहीं न पाथ है।

हम सब हैं आदेश पालने वाले प्रभु के,
जड़ शरीर में जीव डालने वाले प्रभु के।
जीना है वह कहे, कहे मरना है हमको,
इंगित के अनुसार कार्य करना है हमको।
जो कुछ उसको अच्छा लगे
वह कर्त्ता करता रहे,
हर्त्ता है वह हरता रहे,
भर्त्ता है भरता रहे!

बाह्य विषय को लुप्त देख हम हत होते हैं,
व्याकुल होकर और धैर्य खोकर रोते हैं।
पर अन्तःकरणस्थ विभव से बेसुध रहते,
निरवलम्ब-से शोक-सिन्धु में पड़कर बहते।
हा! क्या अबोध सन्तान को
परम पिता न बचायँगे?
वे राम विश्व-रममाण क्या
पार हमें न लगायँगे?

हे अचिन्त्य अखिलेश विश्व-ब्रह्माण्ड-विहारी,
शिरोधार्य है नाथ, हमें सब शास्ति तुम्हारी।
देव, तुम्हारा दान क्यों न समुचित ही होगा,
अहित न होगा कभी हमारा, हित ही होगा।
केवल इतनी ही विनय है,
सहने का बल दो हमें,
अपहरण-मरण से जूझते
रहने का बल दो हमें।

चयन

चुन ले चला हमारा साथी सुमन कहाँ तू,
माली, कठोर माली,
केवल कराल काँटे है छोड़ता यहाँ तू,
यह रीति है निराली।

किसको बसायगा हा! हमको उजाड़कर यों,
यह तो हमें बता तू?
झंखाड़ छोड़ता है इस दीन झाड़ पर क्यों?
हत देख यह लता तू।

तेरे कठोर कर में कुम्हला रहा कुसुम है,
बिखरें न हाय! दल ये।
खोकर किरीट-मणि-सी दुःखार्त्त आज द्रुम है,
द्विज मौन हैं विकल ये।

भौंरे पलट रहे हैं इस शून्य वृन्त पर से,
मकरन्द कौन देगा?
आतिथ्य को उठाकर इसके सुवास घर से,
तू कौन पुण्य लेगा?

मृदु मन्द-मन्द गति से, शीतल समीर आकर,
दल-द्वार खटखटाता।
पर लौटता विरति से है वह सुरभि न पाकर,
निज पंख फटफटाता।

यह फूल जो मधुर फल समयानुसार लाता,
तू सोच देख मन में,
निज इष्ट के लिए क्या वह भोग में न आता,
बलिदान कर भुवन में?

हा तात ! जा रहे हो तुम आज टूटकर यों,
पर वश नहीं तुम्हारा।
हम रह गये गहन में क्यों हाय ! छूटकर यों,
पर दोष क्या हमारा।

तुम आप तो कृती हो, खिलकर बिना झड़े जो
सुर - कण्ठ - हार होगे।
हतभाग्य हाय ! हम हैं काटों - भरे पड़े जो,
सबने स्वभाग्य भोगे !

निरवलम्ब

अब तो अवलम्बन तेरा है,
होकर भी अस्तित्व नहीं-सा आज कहीं भी मेरा है।

जो प्रकाश था बुझा अचानक झंझा के झोंके से,
खड़े रह गये हैं सब साथी चित्रित-से चौंके-से।
यह विस्तीर्ण विश्व अब मानो एक संकुचित घेरा है,
चारों ओर अँधेरा है,
अब तो अवलम्बन तेरा है।

नहीं प्रकाश मात्र ने, हमको छाया तक ने छोड़ा,
जाग हमारे हृदय-देव, अब जब सबने मुहँ मोड़ा।
सभी डरों से घिरा आज यह बीच डगर में डेरा है,
अब भी दूर सबेरा है,
अब तो अवलम्बन तेरा है।

समाधि

[१]

ओ मेरे अभिमानी !
रहा अन्त में याचक ही तू होकर भी चिरदानी ।
देश काल का मेल मिलाकर,
आप मृत्यु तक अमृत पिलाकर,
माँगा भी क्या होंठ हिलाकर,
हा ! यह खारा पानी !
ओ मेरे अभिमानी !

समाधि

तुझ-सा एक रत्न यदि पालें,
आँखें नया सिन्धु रच डालें।
पर हम कितना ही रो-गालें,
तूने लम्बी तानी!
ओ मेरे अभिमानी!
सो तू, सुख पूर्वक सो, भाई,
मृग ने मरीचिका तो पाई!
पर जाने वह मेरा न्यायी,
उसने कैसी ठानी?
ओ मेरे अभिमानी!

[२]

यों ही, तुझे पथ में पड़ा-सा हम पागये,
आत्म ग्लानि भूल आप अपने को भागये।
जो हमारे घर सो नहीं है किसी राजा के,
झूठ क्यों कहें हम, घमण्ड में थे आगये।

ओ धन, परन्तु क्या हमारा गर्व झूठा था?
मीठा जो हमारा वह क्या किसीका जूठा था?
जगती की मौज घर बैठे मिली हमको,
किन्तु क्रूर काल तब अब-सा न रूठा था।

राज-रत्न हाय! मुझ दीन के है तू कहाँ?
खोजकर हार गया मैं तुझे जहाँ तहाँ।
किन्तु वह शुक्ति यहीं, वस्तुतः यहीं यहीं,
तुझ-सा विशाल मोती फैलके फले जहाँ।

समाधि

फेंक दूँ इसे मैं ? नहीं, रक्खूँगा सँभालके,
तल में छिपाके पुण्य तीर्थ-जल डालके।
लौटना पड़ेगा तुझे एक दिन जान ले,
देगा काल आप किसी पात्र को निकालके।

कोई हतभाग्य यदि हरने को आगया,
हार नहीं, छार हड्डियाँ ही वह पायगा,
किन्तु मैं ही हूँगा वह भावी भाग्यशाली क्या,
जिसके लिए तू फिर लौटकर आयगा !

चक्रवाकी

हो रहा है घोर अन्धकार मय सारा विश्व,
वीचिमयी बीच में गभीर नीर-धारा है;
तू है इस पार, चक्रवाक उस पार गया,
दैव-दुर्बिपाक पर चलता न चारा है।
कैसे कहें, चक्रवाकी! फिर भी तू धैर्य धर,
दयित-विहीना हाय! दीना हुई दारा है;
किन्तु तू ही सोच, तेरा क्रन्दन-निनाद सुन
शान्ति नहीं पा सकता तेरा प्राण प्यारा है।

प्रतिशोध

चौथेपन का प्रथम पुत्र, अन्तिम वही,
ठाकुर के सुख की न कहीं सीमा रही।
होनहार ऐसा कि नहीं जाता कहा,
कहते हैं सब उसे निहार अहा! अहा!

आज उसीका ब्याह चित्त की चाह से,
घर ही क्यों, भर गया गाँव उत्साह से।
होते चारों ओर मंगलाचार हैं,
नृत्य गीत आमोद विनोद अपार हैं।

प्रतिशोध

वर सज्जित हो रहा, बराती सज रहे,
एक साथ शत वाद्य निरन्तर बज रहे।
वर की माँ, वह आज क्या नहीं वारती,
थाल सँजोकर है उतारती आरती।

सहसा यह चीत्कार उठा कैसा कड़ा,
उठ ऊपर आनन्द-नाद के सुन पड़ा?
वर को बाधा हुई अचानक शूल की,
भोजन में तो नहीं रात कुछ भूल की?

कुछ हो विधि ने बात बड़ी प्रतिकूल की,
लगती किसे न चोट किसीके मूल की?
लोग दौड़ने लगे, बड़ी हलचल पड़ी,
क्या से क्या हो चली अचानक यह घड़ी।

आये वैद-हकीम, दवाएँ दी गईं,
जितनी जो हो सकीं क्रियाएँ की गईं।
किन्तु विफल! वर, 'मरा हाय! अब मैं मरा'
कह चिर नीरव हुआ कि सूखा तरु हरा।

प्रतिशोध

आला था यह एक अनोखी धार का,
पार रहा कुछ वहाँ न हाहाकार का।
माँ ने रक्तस्नान किया सिर फोड़कर,
वह मूर्च्छित हो गिरी पुत्र के क्रोड़ पर।

पिता खड्ग ले आत्मघात करने चला,
मरा देख निज पुत्र आप मरने चला।
लोगों ने धर पकड़ लिया झट जब उसे,
हुआ मरण भी कठिन वस्तुतः तब उसे।

प्रभु की लीला! उसे कौन समझे भला?
सहसा फिर से श्वास मरे सुत का चला।
'मूर्च्छा थी, भय नहीं, अरे देखो इसे,
मरें शत्रु, तुम मरा समझते हो किसे।

लुटता लुटता बचा तुम्हारा लाल यह!'
सचमुच फिर जी उठा मरा भी बाल वह!
बैठ गया उठ रक्त नेत्र निज खोलकर,
विस्मय वर्द्धक हुआ स्वस्थ-सा बोलकर।

"ठाकुर ! मैं हूँ कौन, मुझे हो जानते ?
बेटा ? तो तुम मुझे नहीं पँहचानते।
किसका बेटा ? अरे, शत्रु तुमसे पला,
लेकर निज प्रतिशोध लौट अब वह चला !

उठूँ आज भी क्यों न क्रोध से काँप मैं,
याद करो, हूँ वही विपिन का साँप मैं !
यद्यपि था कृमि-कीट कराल-कठोर मैं,
लगा रहा था ध्यान सूर्य की ओर मैं।

कुछ लोगों के साथ अश्व पर तुम चढ़े,
आ निकले जो कहीं जा रहे थे बढ़े।
सहसा मुझको देख रुके कुछ दूर पर,
'अरे काल है !' छोड़ा तुमने क्रूर शर !

अरे काल है, काल कहाँ पर है नहीं ?
दूर न जाओ उसे देख लो तुम यहीं।
घुस आता मैं कहीं तुम्हारे गेह में,
तब भी था आघात उचित उस देह में।

प्रतिशोध

वह वन था, हाँ, मैं न तुम्हारा रक्ष्य था,
पर आक्रामक था कि तुम्हारा भक्ष्य था?
धरती माता सभी जन्तुओं को धरे,
इसपर सबका ठौर सदा जीते-मरे।

मारा तुमने मुझे अकारण ही वहाँ,
उसका यह प्रतिशोध लिया मैंने यहाँ।
वही व्याल मैं बना तुम्हारा बाल था,
लाल नहीं था, मैं यथार्थ में काल था।

पुत्र नहीं, मैं शत्रु तुम्हारा हूँ वही,
गया न करके व्या, बहुत समझो यही।
वह इस कारण, चले मुझे तुम मारकर,
पर लौटे कुछ सोच, गये संस्कार कर।

उसका प्रत्युपकार समझ लो यह मिला,
छोड़ चला जो मैं न बहू विधवा-शिला।
उर पर जिसका भार सदा अनुभव करो,
और सदा सिर पटक पटककर तुम मरो।

प्रतिशोध

व्यय न कराया वित्त इसीसे ब्याह में,
लगा सको तुम उसे राम की राह में।
इसीलिए मैं खोल चला यह भेद भी,
दे तुमको सन्तोष तुम्हारा खेद भी।

आशा इससे अधिक वृथा है, छोड़ दो,
रक्खो मेरे मोह-तन्तु वा तोड़ दो।
करता हूँ अब राम राम लो, मैं चला,
सब निज कर्माधीन भला वा अनभला।"

सुमन्त्र

मिले मुझे क्या क्या संयोग !
किन्तु भाग्य में थे ये भोग।
वे प्रसंग, जो सभी जना दें,
ज्ञान रत्न की खान खना दें,
कवि किंवा तत्वज्ञ बना दें;
और मिटा दें भव के रोग।
मिले मुझे क्या क्या संयोग !

पर मैं था यह अन्ध अभागा,
कभी न चेता, कभी न जागा।
तोड़ न सका मोह का धागा,
जोड़ न सका एक भी जोग।
मिले मुझे क्या क्या संयोग!

बस अब यही सुमन्त्र जगाऊँ,
निज दुःखों से नेह लगाऊँ।
उनसे उनकी दृढ़ता पाऊँ,
सुख है जहाँ समझ लें लोग।
मिले मुझे क्या क्या संयोग!

सुदर्शन

देखता है फिर भी यह दीन,
इस आँगन में उगा और भी अंकुर एक नवीन।

हृदय, परन्तु रहो तुम रूखे,
उग-उगकर कितने ही सूखे।
अपने रोने के ही भूखे,
चले गये रसहीन।
देखता है फिर भी यह दीन।

सुदर्शन

रहे सुदर्शन यह कितना ही ,
नहीं परन्तु अलं इतना ही ,
हाय ! सोचता है जितना ही ,
अस्थिर मानस - मीन ।
देखता है फिर भी यह दीन ।

कैसे सेऊँ, कैसे पालूँ ?
अपना अस्थि-सार भी डालूँ ,
जल सींचूँ वा शोणित ढालूँ ,
पर क्या त्राण अधीन ?
देखता है फिर भी यह दीन ।

कभी ताप है, कभी तुहिन है ,
जो कट जाय, वही शुभ दिन है ।
सचमुच आशा बड़ी कठिन है ,
खिन्न खीन भी पीन ।
देखता है फिर भी यह दीन ।

मन, कह कहकर वह दे, यह ले,
दे-ले चुका बहुत जो पहले,
उसका यह देना भी सह ले।
वह अधिकारासीन।
देखता है फिर भी यह दीन।

किन्तु कहीं यह विषफल लावे,
तो उगता ही मुरझा जावे।
एक आह भर रक्षा पावे,
तू चिर चिन्तालीन।
देखता है फिर भी यह दीन।

आवागमन

अरे, यह आना-जाना छोड़ !
आया नाता जोड़ और झट चला उसे तू तोड़ ।

रक्खा नहीं कि पैर उठाया,
मानो कोई डँसने आया ।
देखी तेरी ममता माया,
चला गया मुहँ मोड़ ।
अरे, यह आना-जाना छोड़ ।

तुझे जानकर भी यों वंचक,
आता नहीं चेत क्यों रंचक ?
लगा मोह का मुझको पंचक,
पर क्या हारूँ होड़ ?
अरे, यह आना-जाना छोड़ ।

अनुशोचना

मूर्त्तिमन्त जननी के प्रेम !
वारूँ तुझपर भारों हेम !
तू था चलता फिरता फूल ,
अंचल-धन था तेरी धूल ।
ऊपर कल्पवृक्ष अनुकूल ,
नीचे तुझमें उसका मूल ।
रख न सका मैं तेरा क्षेम ।
मूर्त्तिमन्त जननी के प्रेम !

कण्टक-किरीट

चुन ले चला हमारे फूल,
माली, छोड़ दिये क्यों तूने ये कण्टक ये शूल !

माना तू मृदुलस्पर्शी है,
फिर भी हाय ! विषमदर्शी है।
जो फूलों का, नहीं वही क्या काँटों का भी मूल ?
चुन ले चला हमारे फूल।

तू जिसका वेतन-भोगी है,
जान लिया, रागी-रोगी है।
उड़े न उसके हाथों पड़कर अभागियों की धूल।
चुन ले चला हमारे फूल।

जा, फिर भी तू सफल मनोरथ,
हमें देखने दे उसका पथ
पहनेगा कण्टक-किरीट जो अमृतपुत्र अनुकूल।
चुन ले चला हमारे फूल।

क्षार पारावार

छोड़ मर्यादा न अपनी वीर, धीरज धार,
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार!

रोक सकता है तुझे क्या मृत्तिका का तीर,
थाम अपने आपको तू ओ अतल गम्भीर!
व्यर्थ मटमैला न हो वह नील निर्मल नीर,
ताप-दुःशासन-दलित भू-द्रौपदी का चीर!
सुन, अमर्यादा प्रलय का खोल देगी द्वार,
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार!

क्षार पारावार

ये गले पिघले हुए पर्वत-सदृश कल्लोल,
ग्रास करने जा रहे हैं कह, किसे मुहँ खोल।
ओ सलिल, वातूल अपने तनिक तू ही तोल,
वेग वह वेला वराकी सह सकेगी, बोल?
धीर, अपने ही हिये पर झेल उसका भार।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार!

हाय! जल में भी जले जो, एक ऐसी आग,
जान ले तब, प्राकृतिक है यह प्रबल उपराग।
उचित ही यह हाँफना, यह उफनना, ये झाग,
पर ठहर, प्रभविष्णु तू न सहिष्णुता को त्याग।
काट दे बन्धन सहित सब कुछ न तेरी धार।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार!

मथित है, हृतरत्न है, फिर भी नहीं तू दीन,
देवकार्य - निमित्त था वह योग एक नवीन।
पूछ देख, अनन्त कवि तेरे हृदय में लीन,
अचल-सा यह विश्व है तुच्छातितुच्छ-विहीन।
तू बड़ा है तो बड़े उस त्याग को स्वीकार।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार!

क्षार पारावार

क्या अमृत के अर्थ है यह भीम तेरा नाद ?
तो गरल भी तो गया, तब कौन हर्ष-विषाद ।
जानते हैं जलद तेरे क्षार जल का स्वाद,
और जगती को जनाते हैं सदा साह्लाद ।
ओ मधुरलावण्यमय, तू छोड़ क्षोभ विकार ।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

विकल है यदि तू दिवंगत देख मंजु मयंक,
तो निरख, उसको मिला है अचल ऊँचा अंक ।
इष्ट सबको एक-सा वह, राव हो वा रंक,
वह वहाँ कृतकृत्य है, रह तू यहाँ निःशंक ।
देखकर सद्गति किसीकी उचित क्या चीत्कार ?
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

रस हमीं-हममें रहे, क्या ठीक है यह बात ?
सौम्य, रक्खे एक सीमा क्यों न तेरा गात ।
अखिल में अनुभूति अपनी प्राप्त तुझको तात,
सरस है सारी रसा पाकर सलिल-संघात ।
मिल हुआ दिव भी तुझीमें दूर एकाकार ।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

वस्तुतः यह क्षोभ तेरा या अतुल उल्लास ?
हाय ! उपजाती बड़ों की मौज भी है त्रास ।
सह्य तेजोमय किसे रवि का प्रचण्ड विकास ,
और भोलानाथ हर का हास, ताण्डव रास ?
ध्वंस के ही साथ है निर्माण का व्यवहार ,
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

शान्त, ओ गम्भीर ! ओ उत्ताल, जल-जंजाल !
व्योम तेरी ऊर्मि में, आवर्त्त में पाताल !
व्यथित, तेरे वाष्प की रस-वृष्टि ही चिरकाल ,
है हरा रखती धरा को दे सुमुक्ता - माल ।
एक तेरे अंक में है यानगत संसार ।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

देख अपनी ओर तू ओ घोर - सुन्दर - सार !
लाख रत्नों से भरे तेरे धरे भाण्डार ।
लाख लहरों का रहे तुझमें सदा संचार ,
लाख धाराएँ करें तेरे लिए अभिसार !
साख एक बनी रहे, बन्धन नहीं, वह हार ।
क्षुब्ध पारावार मेरे, क्षार पारावार !

सुदर्शन

सुदर्शन,

तुम जानते हो, मैं तुम्हारे रहते-रहते ही, यह आप-बीती कहने लगा था। स्मरण है, दोपहरी में तुम लेटे रहते थे और मैं लिखने बैठता था? परन्तु तुरन्त ही तुम हँसकर आँखें खोल देते थे और लेखनी पकड़ लेते थे, धूर्त कहीं के!

तुम सोचते होगे, इसके लिए तो समय ही समय रहेगा, जै दिन मैं हूँ, मुझीसे बातें कर लो। यह भी ठीक है। सचमुच मुझे इतना समय है जो काटे नहीं कटता। परन्तु—

जैसे बीते, काल बिता देना ही होगा,
जो कुछ देगा दैव, हमें लेना ही होगा।

तथापि क्या इसे सुनने का अवकाश होगा तुम्हें?

तुम जहाँ हो, वहाँ साथियों की कमी नहीं, तुम्हारे बापू का पुरुषोत्तम वहीं है, तुम्हारे कक्का का रामेश्वर वहीं है, तुम्हारा बड़ा सहोदर श्रीहर्ष भी वहीं है और छोटा सुमन्त्र तो उस दिन तुम्हारे सामने ही गया है।

मैं तुमसे निश्चिन्त हूँ। अब, अपनी चिन्ता करूँ।

तुम्हारा—
'दद्दा'

जन्माष्टमी १९९२

सान्त्वना

"अरे राम ! फिर लाल लुटा जाता है मेरा ,
यही न्याय है और यही निर्णय क्या तेरा ?"

अर्द्ध रात्रि है, भटक रहा है शिशिर समीरण ,
खड़काता खिड़कियाँ, खोल देने को क्षण-क्षण ।
दब-मुँदकर सब लोग पड़े हैं हिम के भय से ,
दो जन अब भी जाग रहे हैं स्फुरित हृदय से ।
मानो कोई चोर घुसा आता है भीतर ,
दम्पति का सर्वस्व लिये जाता है हरकर ।

अग्निदाह, भूकम्प और दिवसों की मारी
है अलज्ज-सी खड़ी बड़ी-सी एक अटारी ।

दीवारों में पड़ी दरारें, दरकी डाटें,
बिछी उसीमें तीन दीन-दुखियों की खाटें।
दम्पति दोनों ओर, बीच में उनका बच्चा,
क्षीणकाय, चिर-रुग्ण, साथ ही वय में कच्चा।
उसकी माँ के साथ अनुज शिशु उसका सोया,
आप आ पड़ा यहाँ दैव का धन-सा खोया!

आग गड़ी है एक ओर गुरसी में ऐसी,
पति-पत्नी के दग्ध हृदय में चिन्ता जैसी!
रक्खा उसपर पात्र उष्ण पानी होने को,
भरा बहुगुना धरा अलग मोरी धोने को।
खूटों पर, दो चार वस्त्र अवसर-उपयोगी,
कहीं खिलौने धरे, जिन्हें ले खेले रोगी।
रक्खे कुछ उपचार-योग ऊपर सिरहाने,
चूर्ण, गोलियाँ, शुष्क-तरल रस, क्या क्या जानें।
रोगी का आधार, फलों का झावा रक्खा,
जिसने कब से अन्न-लवण क्या, नीर न चक्खा!

एक ओर बहु नये पुराने ग्रन्थ धरे हैं,
बेठन जिनके बहुत दिनों के धूल-भरे हैं।
राशि-राशि पोथी-पुराण, अब तो कुछ बोलो,
इस प्राणी का त्राण जहाँ, वह पन्ना खोलो।
सूख रहा यह, भरा पेट में इसके पानी,
शेष रही बस बड़ी-बड़ी आँखें अलसानी।
ये दोनों भी हाय! अचल क्या हो जावेंगी?
कुछ भी देखे विना उलटकर सो जावेंगी?

कहता कोई, यकृत विकार, बढ़ी है तिल्ली,
कोई कहता, भूल गई आँतों की झिल्ली।
शस्त्र - क्रिया उपाय एक लखता है कोई,
पर उसके प्रतिकूल राय रखता है कोई।
युग-युग से हो रहा परिश्रम कितना-कितना,
पर हा, जन का ज्ञान अनिश्चित अब भी इतना!

मन्द-मन्द आलोक, शोक मय मानो वह भी,
तेल बहुत, पर ज्योति अल्प, होता है यह भी।

छाया भूमिगत रूप आप क्या वहाँ विधाता?
बालक है सो रहा, रो रही है उठ माता।
पतित विहग-सा, टूट रही हों जिसकी पाँखें,
पड़ा हुआ है शिशु मूँदकर अपनी आँखें।

"अरे राम! फिर लाल लुटा जाता है मेरा,
यही न्याय है और यही निर्णय क्या तेरा?
और न दे, पर दिये हुए को तो रहने दे,
निराधार मँझधार में न मुझको बहने दे।
मैं तन-मन हार मरी, हाय कितने वे मारे?
निकले मेरे टूट-टूटकर उगते तारे।
जाना था अब सरल इसे जीवन-यात्रा का,
माना था रस-राग एक अच्छी मात्रा का।
रत्न रूप में दिये किन्तु तूने अंगारे,
मुसकाकर जो भूले, बुझे सहसा वे सारे!
अपने सब सुख उसे देखकर भूल गई मैं,
झड़ी क्यों न हा! तभी अरे, जब फूल गई मैं।

तू ही प्रायश्चित्त बता मेरे पापों का ?
मेरा अंकुर जिये, अन्त हो इन तापों का।
अरे दया कर, और क्या कहूँ, तू है सच्चा,
तो प्रमाण का रूप बचे यह मेरा बच्चा !

× × ×

अजी, पुकारो तुम्हीं, तुम्हारा प्रभु है रूठा,
मुझको तो सब आज जान पड़ता है झूठा !"

विलख पड़ी वह व्रत-परायणा, धीरज छूटा,
माता का है हृदय, हाय ! जो टूटा-टूटा।
"क्या करती हो अहो ! उचित है क्या यह कहना ?
'जैसे रक्खे राम, हमें वैसे ही रहना !'
प्रार्थनीय है उसी परात्पर की परवत्ता,
नहीं हमारी स्वार्थ-सिद्धि पर प्रभु की सत्ता।
हमें नहीं, जो उसे इष्ट होगा सो होगा,
तभी कटेगा पाप, जायगा जब वह भोगा।
चलते हैं सब नियम नियन्ता के निज क्रम से,
हम क्या उनको उलट सकेंगे अपने श्रम से ?

पावेगी वह शक्ति भक्तितन्मयता जिसकी
आवश्यकता ही न रहेगी उसको इसकी
किंकर हैं हम और हमारा है वह कर्त्ता
पर क्या, अनुचित कभी करेगा वह भव भर्त्ता
वह जो चाहे करे, उसीमें श्रेय हमारा
रहे न उसमें कभी भले हो प्रेय हमारा
हम अपना कर्त्तव्य करें, फिर चाहे जो हो
फल तो अपने हाथ नहीं, होना हो सो हो
बुद्धि गमाओ न यों, शक्ति भर समझो-बूझो
सविश्वास दृढ़ यत्न करो, विघ्नों से जूझो
ऐसा क्या हो गया अभी, जो घबराती हो
इसकी सुध ले कौन, स्वयं भूली जाती हो
जब तक श्वास, निराश न हो, कब क्या प्रभु चाहे
वे समर्थ सब भाँति, बड़ी हैं उनकी बाँहें
अपुत्रियों से शून्य नहीं यह धरती अब भी,
भरी तुम्हारी गोद दूसरे से है तब भी।
हृष्ट-पुष्ट वह रहा तुम्हारा, यह है मेरा,
यही बहुत है मुझे, व्याधि ने जिसको घेरा।

तुम मेरी अनुहार कुटिल कहती थी इसको,
रक्खो निज-सा सरल-साधु समझी हो जिसको।"

पति ने चाहा यों विनोद में दुःख भुलाना,
किन्तु कहाँ था वहाँ आज हँसना-मुसकाना?
तब भी उनका भाग्य हँस उठा अट्टहास कर,
विकट वज्र-सा प्रकट हुआ वह रसाभास कर।

दम्पति आशा जब न बड़े बेटे की रखते,
वे छोटे की ओर धैर्य के लिए निरखते।
देख सकी यह भी न नियति उन हतदैवों की,
आगत है सब ओर अगति ही गतदैवों की।
जिसके जैसे सुगुण, दोष भी उसके वैसे,
जिसको जो मिल जायँ, भाग्य जिसके हों जैसे।
आया हन्त! वसन्त, कहाँ अलि-कोकिल भूले,
माता के वन आज अभागों के घर फूले!
माता थी या हाय! विमाता वह विकराला?
यदि वह थी शीतला, कौन होगी फिर ज्वाला?

सान्त्वना

जीवित जल-सा गया अवश शिशु एक झपट में,
मृदु कदली-दल झुलस जाय ज्यों लूह-लपट में।
उसे तड़पता देख मनाते उसका मरना,
वे ही, जिससे उन्हें शोक-सागर था तरना!

कैसी विधि है विधे, हाय यह कहो तुम्हारी,
ऐसी सुन्दर सृष्टि और क्षण भंगुर सारी।
इन्द्रजाल का शाल खड़ा निर्मूल किया है,
सोने का संसार बनाकर धूल किया है!
दिया सँजोया, उसे जगाया और बढ़ाया!
क्या उसका उपयुक्त समय था अभी न आया?
विधे, परीक्षा मात्र अभी की थी यह तूने?
पर कह, वे क्या करें हुए जिनके घर सूने?
हाय! फूल-सा हास और मोती-सा क्रन्दन,
जलद-गर्भगत चलित चन्द्र-सा हृदय-स्पन्दन।
खिंचे न क्या क्या चित्र सामने चलते-फिरते,
कहाँ गये वे किन्तु पलक उठते या गिरते?

बुझा वायु से दीप तेल से भरा - भरा ही ,
अंकुर टूटा हरे, हमारा हरा - हरा ही ;
कहाँ गया कर्पूर-पिंड वह धरा - धरा ही ,
उलट गया है राम, जपूँ क्या मरा - मरा ही !

अरे जाग रे जाग, भाग आ अंकस्थल में ,
आये हैं ये कौन डुबाने तुझे अतल में ।
दहन नहीं दह सही, जहाँ खर नक्र-मकर हैं ,
शेष कृत्य यह, और स्वयं स्वजनों के कर हैं !
कुछ धरती में गये, जा रहा है तू जल में ,
शेष बचा सो आज नहीं कल चला अनल में ।
बस अब दो ही तत्व शेष पाता है जन यह ,
वह सूना आकाश और निःश्वास पवन यह !

अरे, बन्द कर लिये पलक-पट तूने सहसा ,
क्या इस भव का दृश्य हुआ तुझको दुस्सह-सा ?
तो कह, तू क्या देख रहा भीतर ही भीतर ,
तेरे मुहँ लच्छिमी, बोल हे मेरे तीतर !

सान्त्वना

अरे जाग रे जाग, हाय ! यह निद्रा कैसी ?
आती जाती नहीं साँस क्यों पहले जैसी ?
कहाँ गये वे स्वप्न, हँसाते - चौंकाते जो,
घुमा फिराकर तुझे यहीं पहुँचा जाते जो।
वही सूर्य है, वही चन्द्र है, वे ही तारे,
किन्तु देखते नहीं तुझे ये नेत्र हमारे।
छाई है सब ओर आज यह निविड़ अँधेरी
होती नहीं विलीन किन्तु वह आकृति तेरी !
कैसे भूलूँ बता, भला भोला मुख तेरा ?
यही दुःख है और यही अब है सुख मेरा।
सुनता था मैं मुग्ध भाव से जिन्हें अरे रे,
अर्थ हीन वे शब्द सुमन्त्र ! मुझे थे तेरे।
तेरी चेष्टा, क्रिया और प्रत्येक बात गिन,
हम छाती से तुझे लगाये रहे रात दिन।
मृदु तू, उसका रोम-हर्ष क्या तुझे गड़ा, कह,
कठिन, इसीसे मुष्टि मार तू भाग खड़ा वह !
कर फैलाकर किलक कभी गोदी में आना,
और कभी मुहँ मोड़ कुटिलता से हँस जाना।

खाट पकड़कर परिक्रमा देना वह भूलूँ,
अथवा पितृ-देवत्व-दर्प से अब भी फूलूँ?
भान भूल आ टूट विहग-सा ऊपर पड़ना,
जब तक सँभलूँ और सँभालूँ मुझे जकड़ना।
अपनेको इस भाँति समर्पण जो कर देगा,
परम पिता भी उसे ससम्भ्रम उठकर लेगा।

इन आँखों में वही आज भी घूम रहा तू,
दिखा दिखाकर मुझे मौज से झूम रहा तू।
फूलेगा क्या फूल, वृन्त पर झूलेगा क्या?
भूलूँ सब कुछ और, मुझे तू भूलेगा क्या?
जाना था यदि तुझे, बता तो क्यों आया था?
कौतुक था, जो तुझे यहाँ ललचा लाया था।
तेरा कौतुक हाय! मरण वह हुआ हमारा,
क्षणिक ज्योति से भला जन्म भर का अँधियारा।
किन्तु नहीं, हम देख सके तेरा वह मुख तो,
जिसकी आशा न थी, पा सके हैं वह सुख तो।

इस विषाद में वही हर्ष क्या नहीं मिला है ?
जल के ऊपर एक कमल-सा अलग खिला है।
उसके कंटक रहें हरे मेरे ही मन में,
पर उसका आमोद फैल जावे त्रिभुवन में।

दुःख उसीको वही, जिसे जो सुख होता है,
अरे हृदय, सह उसे, ठहर, अब क्यों रोता है।
जीवन में क्या वही अल्प, जो तूने जोड़ा,
क्षार-सिन्धु में अमृत एक ही घट क्या थोड़ा ?

जा निर्मोही, यही बहुत जो आया था तू,
रस के तो बस घूँट भले, सो लाया था तू।
पिला गया निज अमृत इसीसे क्या तू प्यारे,
तड़पें, पर मर सकें न हम इस विष के मारे !
किसकी आशा करूँ, दृष्टि तूने ही फेरी,
जीवन-धन की क्षणप्रभा - सी स्मृति है तेरी।
पर ये बूँदें पैर धो सकेंगी क्या उसके,
छिपा हुआ जो यहीं कहीं बैठा है घुसके ?

कष्ट-मिथुन कब रुका एक के घुस जाने पर,
जब तक लें निःश्वास दम्पती दुख पाने पर,
बड़े पुत्र ने ऊर्ध्व साँस ली, परिकर बाँधी,
रुकी न फिर वह साँस, थमी ऊष्मा की आँधी।
रह न सका जब स्वस्थ, रुग्ण फिर रहता कैसे?
वह सुकुमार कुमार ताप चिर सहता कैसे?
तो भी आशा-तन्तु कठिन, अटका था घट में,
किन्तु सार था कहाँ बधिर विधि की उस रट में।
कुम्हलाया हत कुसुम वेदना देकर दूनी,
धरती पर आ पड़ा वृन्तशय्या कर सूनी।
था उसमें जो भृंग, कहाँ उड़ गया, न जानें,
किया करें अनुमान भले ही हम मनमानें।
पड़े रहे सब खेल-खिलौने, गया खिलाड़ी,
अड़ी बीच में खड़ी आज झाड़ी ही झाड़ी।
कौन पुकारे किसे, कौन उत्तर दे किसको,
करे - करावे पार कौन तनु रहते इसको?

सान्त्वना

बनी जवनिका आप हमारे हत जीवन को,
फिर न दिखाई पड़ीं मूर्त्तियाँ वे सब मन को,
रहीं हमारे लाड़-प्यार में जो, हम जिनके,
करो प्रतीक्षा और मरो अब दिन गिन-गिन के।

ओ क्रीड़ा के प्राण! देख ये पड़े खिलौने,
किन्तु कहाँ तू आप हमारे बड़े खिलौने!
ले कागद की नाव न तर ओ भोले-भाले,
भाग चला कह कहाँ, काठ के घोड़ेवाले!
आप अभूषित पड़ी आज यह तेरी भूषा,
देखूँ देखूँ, खोल तनिक अपनी मंजूषा।
रुचि का ही तो मूल्य बताती है वह मुझको,
ओ अवधूत, समान लोष्ट-कांचन थे तुझको।
जब-जब तू हँस भगा झपट झट मैंने पकड़ा,
नहीं छूटने दिया, भुजों में तुझको जकड़ा।
अब भी तू यह रहा, अरे मेरे चित-चीते,
बढ़कर भी ये हाथ किन्तु पड़ते हैं रीते!

तेरा गुन-गुन गान अमृत था इन कानों का,
दूरागत आभास आज भी उन तानों का।
रोने में भी रहा हाय! कितना आकर्षण,
आता कौन न दौड़ छोड़ सब काम उसी क्षण।
एक बार जो कहा, वही सौ बार कहा फिर,
चाहा जो कुछ लिये विना तू नहीं रहा फिर।
तेरे ये संस्कार कहीं विकसित हो पाते,
तो क्या जानें क्या न यहाँ लेकर दे जाते।

हुई न तेरी प्रसव - पीड़िता माँ क्यों वन्ध्या?
अरे निर्दयी, देख, निकट है मेरी सन्ध्या।
दूर खड़ा होगया झाड़ अपनी अँगुली तू,
बीच बाट में छोड़ चला मेरी अँगुली तू!
हा! अकाल घन घिरे हमारे भरे गगन में,
हुई किरकिरी, धूल छा गई त्रिविध पवन में।
कच्चे फल ही टूट पड़े भीषण सन-सन में,
फूट न पाये फूल, झड़े अपने उपवन में।

सान्त्वना

आज यहाँ के रंग - ढंग क्यों ढीले-ढीले ?
असमय अपने खेत पड़े हैं पीले-पीले।
किंवा सृष्टि-विभूति वही सारी की सारी,
भ्रष्टदृष्टि हम आप, नष्ट अनुभूति हमारी।
पावक पानी भरे सदा जिसके मज्जन को,
ऐसी भी अनुभूति अपेक्षित थी इस जन को ?
पर किससे उपयुक्त गिरा पाऊँ मैं इसके,
अन्तर्यामी आप आज हैं खिसके - खिसके !

जीवन यात्रा हमें पूर्ण करनी ही होगी,
यह वैतरणी किसी भाँति तरनी ही होगी।
क्या न करेंगे, यहाँ सभी कुछ करना होगा,
इस जीने में सहज कहाँ वह मरना होगा ?
व्याप गया है यह वियोग सब संयोगों में,
समा गया कुछ रोग हमारे सुख-भोगों में।
काँटे निकले हाय ! आज अपने फूलों में,
एक शूल यह गिना गया है सौ शूलों में।

झेले कितने दुःख और झेलेंगे अब भी,
हम सुध भूले, यहाँ हँसें-खेलेंगे अब भी।
तब भी—तब भी—शून्य हाय, यह कोना होगा,
हँसते-हँसते हमें अचानक रोना होगा।
ऊबेगा जब कभी काम कुछ करते - करते,
और उठेगा तुझे ध्यान में धरते - धरते,
तब भी तुझे पुकार सकेगा क्या यह प्राणी ?
कंठ रुँधेगा, मार्ग नहीं पावेगी वाणी।

'अब न लिखो', 'रे ठहर', 'नहीं, अब नहीं', 'करूँ क्या ?'
'मुझसे खेलो,' 'काम अधूरा छोड़ धरूँ क्या ?'
'फिर कर लेना,' बिला गईं अब वे सब बातें,
और लेखनी छीन भागने की वे घातें !

दमन नहीं कर सका रोग भी तेरे मन का,
रहा वही आह्वान हमारे सम्बोधन का !
जाना ही था तुझे यहाँ से गाते-गाते,
रहे चिकित्सक व्यर्थ रोकते और रुलाते।

सान्त्वना

प्रकृति मधुर थी, किन्तु न थी वह ढीली-ढीली,
स्वजनों की दी हुई कड़ी ग्रोषधि भी पी ली।
तेरा वह दृढ़ पथ्य न था जीवन रखने को,
किन्तु अन्त तक हन्त ! हमारा मन रखने को।

तिथियाँ रिक्ता, वार शून्य, दिन भारी-भारी,
आ-आकर सब चले जायँगे बारी-बारी।
किन्तु नहीं अब कभी लौटकर तू आवेगा,
आकर तेरा ध्यान ज्ञान हर ले जावेगा।
होगी आधी रात, सो रही होगी जगती,
खुल जावेगी आँख अचानक लगती-लगती।
आकर आहट एक निकट से चौंका देगी,
पाकर ठंडी साँस विदा वह हमसे लेगी।
आवेंगे व्रत-पर्व, प्रसाद बँटेगा अब भी,
सबको देकर शेष रहेगा वह कुछ तब भी।
पर लेने को जब न एक कर और बढ़ेगा,
चढ़े हुए पर एक अश्रु चुपचाप चढ़ेगा।

हूँगा बाहर व्यग्र कभी घर की सुध करके,
दीख पड़ेंगे बाट जोहते सब जन घर के।
पर अब मेरे संग न वे देखेंगे तुझको,
और न तू ही दीख पड़ेगा उनमें मुझको।
आकृति से कुछ अधिक कहीं कृति दीख पड़ेगी,
चौंक वहाँ से दृष्टि कहाँ से कहाँ अड़ेगी।
मैं समक्ष को ठीक देख भी नहीं सकूँगा,
वहीं मूढ़-सा खड़ा रहूँगा और थकूँगा।
बहता आया जगत्प्रवाह, बहेगा यों ही,
रहता आया हर्ष,- विषाद, रहेगा यों ही।
हम मिल बिछड़े यहाँ, बिछड़कर कहाँ मिलेंगे ?
क्या जानें, वह ठौर कहाँ, फिर जहाँ मिलेंगे !

रख न सके हम तुझे, चला न उपाय हमारा,
इतना ही संयोग यहाँ था हाय, हमारा।
जाता है मुहँ मोड़ छोड़ सुख जो शैशव के,
अब उसके या योग्य नहीं होता वह भव के।

सान्त्वना

तो जा सुख से वहाँ, पा सके क्षेम जहाँ तू,
पा सकता है किन्तु बता यह प्रेम कहाँ तू ?
मृत्यु-मोह में मुग्ध भूल मत अरे अभोगी,
माँ से बढ़कर प्यार करे, सो डाइन होगी !
तेरी आज्ञा शिरोधार्य थी यहाँ हमारी,
छोटा होकर रहा बड़ों का तू अधिकारी।
तेरा आसन रहा अंक ही तो हम सबका,
पर तूने यह वैर निकाला है कह, कबका ?
अथवा जब तक चढ़ा फिरा गोदी में आहा,
तब तक करता रहा यहाँ तू स्वाहा-स्वाहा।
पर वह आसन गया और जब शासन आया,
विद्रोही-सा खिसक गया तू तजकर माया।
कोई पर आत्मीय रूप यों धर सकता है ?
कोई अपना कभी घात यह कर सकता है ?
कैसे मैं विश्वास करूँ ऐसे अभिनव में ?
सचमुच कुछ भी नहीं असम्भव क्या इस भव में ?
ठगा गया मैं, किन्तु मुझे सन्तोष यही है,
तुझमें मेरी मनोभावना शुद्ध रही है।

किसी जन्म का दोष मात्र ही देखा तूने,
पर मेरा यह प्यार न कुछ भी लेखा तूने।
विगत जन्म का रहूँ क्यों न तेरा अपराधी,
तेरी प्रियता यहाँ शक्ति भर मैंने साधी।
वैर ले चुका वीर, आज निर्णय कर इसका,
मैं तुझको ही छोड़ साक्ष्य दूँ कह तू, किसका ?
मैं तुझसे प्रतिवैर न लूँ, कापुरुष सही मैं,
वैरी को भी न हो दुःख पा रहा वही मैं।
यदि अपना-सा यही प्रेम तुझसे पा जाऊँ,
एक जन्म तो मुक्ति छोड़कर भी मैं पाऊँ।

आ वंचक, मैं एक बार फिर तुझे निहारूँ,
तेरे छल पर आज सकल अपना बल वारूँ।
मैं तो निज हो चुका, भला अब पर क्या हूँगा ?
भोग रहा जो घाव, वही क्या तुझको दूँगा ?
मानी मैंने हार, हुआ अब तो मनचीता,
पर सच कह, तू आज जीतकर भी क्या जीता ?

सान्त्वना

बच्चा ही था, भूल गया अपनापन सारा,
जीवन तेरा धर्म, भले हो मरण हमारा।
खोया मैंने तुझे, इसीसे मैं यह रोया,
पर तूने क्या किया, आप अपनेको खोया!
ऐसा करना अब न कभी, मैं तुझे जता दूँ।
भूला तू निज रूप ठहर, सुन वत्स, बता दूँ।
तेरे छोटे 'पुत्र'–नाम में विश्व समाया,
तुझमें अपना आप सुदर्शन हमने पाया।
मरने से है यहाँ बचाया सबको तूने,
भरे भुवन भांडार बिना तेरे सब सूने।

श्रीगणेश तू लोक सृष्टि का, विधि का बाजा,
एक मात्र फल ओक-दृष्टि का, निधि का राजा,
स्वर्गलोक में कल्पवृक्ष है जो मनभाया,
तू ही उसका मूल महीतल में है छाया।
हैं जितने उद्योग यहाँ, तेरे ही कारण,
उठ, उठ मेरे शोक-रोग के एक निवारण!

जीवन के आरम्भ, मृत्यु के अन्त, सिहर, उठ,
इस अरण्य के अरे अनन्त वसन्त, विहर, उठ।
परम्परा - प्रतिमान, समान विकास हमारे,
ओ अपठित औत्सुक्य पूर्ण इतिहास, हमारे।
आ, अतीत के स्मरण, आज के तरण, हमारे,
ओ भविष्य के शरण, वंश के वरण, हमारे।
दो देहों के एक प्राण, प्रत्यक्ष जगत में,
अपर लोकगत पितर जनों के लक्ष, जगत में।
कविराजों के प्रेम-राज्य के राज-दुलारे,
आ, ले कुछ भी मोल, बोल दो बोल, बुला रे!
नारी के निस्तार, अरे विस्तार नरों के,
आशाओं के केन्द्र, अटल अमरेन्द्र, मरों के।
ओ उद्यम के तार, आय - भांडार सभी के,
ओ श्रम के परिहार, सहज सुख-सार सभी के।
दम्पति के मध्यस्थ, एक मत से निर्वाचित,
अहो स्त्रीत्व के दान, स्वयं पौरुष से याचित!
अरे वासना-पंक-पद्म, श्रीसद्म, हमारे,
उत्सव के आधार, और आँखों के तारे!

सान्त्वना

अँधियारे के दीप, द्दश्य ओ उजियाले के,
शिरोरत्न, इस मन्त्रमुग्ध भव-विष वाले के।
ओ आमोद - पयोद, विनोद - सुधा - रस - वर्षण,
ओ भोजन के स्वादु, प्रवासी के आकर्षण।
ओ अपने से अधिक शील-गुण सद्म सभीके,
यदि तू आवे नहीं, जायँ हम कहाँ, कभीके।
जाग, हमारे इष्ट पराजय के जय-गौरव,
जहाँ नहीं तू वहाँ स्वर्ग भी है बस रौरव।
बिना तरों के तत्र भवान भगीरथ राजा,
असमर्थों के श्रवण, न जा यों, आ जा, आ जा।
लौट, जरा से जीर्ण जनों के पुरु-यौवन, तू,
कोई क्या ले यहाँ, न हो जो जन के धन, तू।
झलक रहा है सदा रजोगुण रंजित पट में,
छलक रहा है स्नेह सर्वदा मानस तट में।
भवसागर का अमृत भरा है तेरे घट में,
लटक रहा है लोक लटकती तेरी लट में।
देखें जिसमें आत्मरूप हम, तू वह दर्पण,
तुझे बाल - गोपाल, हमारे सब फल अर्पण!

पर यह तू अव्यक्त, कहाँ हम तुझको पावें ?
रुला न हा ! यों हमें, चाहते हैं हम गावें।
डूब न ओ आनन्द-सिन्धु के इन्दु, उदित हो,
जन-सनाथता के सुहाग के बिन्दु, मुदित हो !
भंगुर भव के मूर्तिमन्त अविनाश, कहाँ तू,
न कर न कर यों मुझे नितान्त निराश यहाँ तू।
अरे खो न जा, धूल-भरे ओ मेरे हीरे,
अथवा मैं भी चलूँ तात, चल धीरे-धीरे।
भाग्य-भोग जो शेष; उन्हें मैं पूरा कर लूँ,
डुबकी लेकर नयन-नीर में नेंक निखर लूँ।

चील झपट्टा मार काढ़ ले गई कलेजा,
मृत्यु, बता जा यही, तुझे किसने यों भेजा ?
वह हत्यारा नहीं, हमारा है जो स्रष्टा,
हैं उसके कुछ नियम, और वह उनका द्रष्टा।
हुआ प्रमाद अवश्य हमारा कोई ऐसा,
होना ही था यहाँ हुआ उसका फल जैसा।

पर असामयिक काल, दर्प मिथ्या यह तेरा,
गया हमारा लाल, किन्तु तू रहा लुटेरा।
बाँधेंगे हम तुझे एक दिन विजयी बनके,
ये तो हैं बलिदान हमारे जय-साधन के।
अचल नहीं तू चपल, कभी तो कोई हममें,
चला सकेगा तुझे विवश कर एक नियम में।
आत्म-समर्पण करे मृत्यु को यदि जीवन ही,
तो जीवन का दोष नहीं, दोषी हैं जन ही।
हम रख पाते नहीं हाय! जाता है जीवन,
तदपि हमारे लिए लौट आता है जीवन।

ज्ञान-शाप, अज्ञान-पाप यह मरण हमारा,
नहीं बहेगी किन्तु सदा उलटी ही धारा।
आज न हो, कल हमें बोध होगा ही होगा,
जीवन-जन्म अनन्त, शोध होगा ही होगा।

ओ विनाश, तू देख आप अपनेको पहले,
है क्या कोई ठौर जहाँ रुपकर तू रह ले?

मर सकता यदि एक तुच्छ तृण तेरा मारा,
तो बन जाता शून्य कभी यह उपवन सारा।
होते-होते गलित एक फल फुलवाड़ी में,
क्या सौ बीज बिखेर नहीं जाता झाड़ी में?
फिर - फिर तेरा पेट फोड़ अंकुर फूटेंगे,
नित्य नया आलोक अनोखा रस लूटेंगे।
जो जिसका है क्षीण, वही तुझको देता है,
और आपको फिर नवीन वह कर लेता है।
तेरे हाथों रिक्त हुआ जो झड़ता - झड़ता,
काल! इन्दु-सा उसे किसे है भरना पड़ता?
अन्त हमारा एक नया आरम्भ समझना,
यह यथार्थ है, इसे न मिथ्या दम्भ समझना।
जो ऊपर से मरण, आज तव-भुक्त हुआ है,
विस्मय क्या, यदि तुझे मार वह मुक्त हुआ है?
सम्प्रति यदि यह नहीं हुआ, तब भी मनभाया—
नूतन जीवन - जन्म आज भी उसने पाया।
वे पाँचों है तत्व कि जिनमें व्याप्त हुआ वह,
सीमा छोड़ असीम भाव को प्राप्त हुआ वह।

सीमित हम, उसको न ग्रहण कर पाकर रो लें,
पर क्या, तू ही बता, हाथ हम उससे धो लें?
वह दिन भी क्या दूर, चढ़े तेरे कन्धों पर,
पा लेंगे हम उसे पूर्ण विजयी बन्धों पर।
तब तक साधें हमीं चाहते उससे जो हम,
है यह वातावरण उसीका, जो वह, सो हम।

दे न सकूँ तो नाथ, लिया मैंने क्यों तुझसे?
तूने ही क्यों दिया, जिसे लेना था मुझसे?
हरे, क्षमा कर किन्तु धृष्टता है यह मेरी,
भूला मैं, वह वस्तु अन्ततः तो थी तेरी।
मैं था आप अपात्र, तदपि तूने मन रक्खा,
मैंने भी उस रम्य रत्न का रँग-रस चक्खा।
अब उसका सब भार तुझीपर है, मैं हलका,
फिर भी यह हत हृदय आज क्यों छलका-छलका?
मुझे उचित था आज स्वयं आभारी होना,
मैं हो सका न योग्य, इसीका है यह रोना।

खुला आज भी परित्राण-पथ किन्तु थका मैं,
यह भी किसका दोष, आप यदि चल न सका मैं ?
एक नहीं, दो नहीं, दिये साधन दस तूने,
रक्खा सबका मूल्य एक संयम बस तूने।
कठिन ! तथापि सुयोग मुझे था, योग्य बनूं मैं,
भोगी बनकर किन्तु क्यों न अब भोग्य बनूँ मैं ?
वाम मान ले कभी मोह के वश मति मेरी,
तो इससे हे राम, रुकेगी क्यों गति तेरी ?
तेरे गूढ़ रहस्य, मूढ़ हम कैसे जानें,
यही बहुत, जो भूल-भटक लग जायँ ठिकानें।

विधि से भी वह मूर्त्ति नहीं अब बनने वाली,
मैं तुझसे क्या कहूँ, अरी ओ जनने वाली !
रोक सकेगा आज कौन तुझको रोने से
पर खोया धन मिल न जायगा सुध खोने से।
आज धूल में लोट रही तू दीना-हीना,
तेरा अर्जित किसी छली ने तुझसे छीना।

सान्त्वना

हाँ, वंचित होगई आज तू उसी रतन से,
जिसे पेट में धरे छिपाये रही जतन से।
भाई होकर लाल पड़ा तुझको वह खोना,
भूली जिसके लिए सभी तू खाना - सोना।
रोगी का-सा पथ्य लिया, कुछ स्वाद न चक्खा,
तू गीले में रही, उसे सूखे में रक्खा।
वारा जिसपर राज्य - रूप यौवन-धन तूने,
और किया स्वीकार स्वयं दासीपन तूने।
रक्तसार निज पिला-पिलाकर जिसको पाला,
चला गया मुहँ मोड़ आज वह तेरा लाला।
कितने व्रत - उपवास उसीके लिए किये थे,
कहते हैं सुख-भोग जिन्हें, सब त्याग दिये थे।
रही भोगिनी, बनी योगिनी-सी इस क्रम से,
नहीं ठगाई गई आज भी तू उस श्रम से।
मिला तुझे उपलक्ष्य रूप में नया लक्ष्य यह,
रक्षक होकर रहे राज्य से अधिक रक्ष्य यह।
खोया तूने बहुत, किन्तु पाया भी कम क्या ?
इस जगती में कहीं सुलभ है यह संयम क्या ?

दिखलाया सुख, किन्तु दिया दुख ही धाता ने,
उसका भी कर दिया अन्त यह उस दाता ने।
अब भावी का सोच हमें क्या, हो तो यम को,
यह प्रत्यक्ष भविष्य हमारा भूला हमको।
पहले भी वे न थे और हम थे अब जैसे,
हाँ, आशा थी, किन्तु हुए उसके फल ऐसे।
अब सब आशा छोड़ क्यों न निश्चिन्त रहें हम,
इससे बढ़कर कौन पन्थ है, जिसे गहें हम।
क्या ऐसे हृतरत्न हमीं हैं यहाँ अकेले?
हमसे भी कुछ अधिक दुःख बहुतों ने झेले।
प्रतिवासी का गया अभी वह युवक, उजाला,
बैठी है नव-वधू विवश विधवा कुल-वाला!
अर्जन अपना भला, भरोसा किसका करिए,
पिता-पुत्र पर भी न भार निज भरसक धरिए।
पर ऐसे भी गये, सहारे जो घर भरके,
देख एक को एक रहें हम धीरज धरके।
कैसे कैसे भाग्य यहाँ कितनों के फूटे!
सोचें तो हम लुटे-कुटे भी सस्ते छूटे।

सान्त्वना

तेरा क्या खोगया, जीव, क्यों जड़ित खड़ा है,
आ, पाने के लिए लोक-परलोक पड़ा है।
कहीं जायँ वे, उन्हें एक दिन हम पावेंगे,
जल के सकल प्रवाह जलधि में मिल जावेंगे।
पर होगा यह मिलन एक निश्चित पद्धति से,
बढ़ा न लें व्यवधान कहीं हम तिर्यग्गति से।
चले गये सो सभी भले थे, भोले-भाले,
फिर भी वे थे अतिथि, एक दिन जाने वाले।
अब जो हैं, वे सभी हमारे घर ही घर के,
साथी, सुख में और दुःख में जीवन भर के।
अथवा वे बच गये जन्म भर के भोगों से,
थोड़े में ही छूट गये भव के रोगों से।
हम जो जो सह रहे उन्हें सहना न पड़ा वह,
बच निकले वे स्वयं भाग्य क्या न था बड़ा यह।
वे पंछी थे और कहीं के उड़ते सपने,
उतरे विश्रामार्थ तनिक आँगन में अपने।
हमने देखा उन्हें, उन्होंने हमें निहारा,
बोले-डोले और—अरे, कम क्या यह सारा?

सान्त्वना

रस ही रस दे गये यहाँ नित नये हमें वे,
निज भविष्य का सोच नहीं दे गये हमें वे।
उनका सारा भार लिया है जिसने अबसे,
सोचो, अधिक समर्थ नहीं क्या वह हम सबसे ?
अपना कौन कृतित्व यहाँ, बस बात यही है,
स्वाभिमान है यही और निज घात यही है।
हमें यही, निज अहम्भाव ही, भटकाता है,
अपने मिथ्या मकड़-जाल में अटकाता है,
हममें निज कर्तृत्व गर्व रहता है जब लौं,
हमको ही परिणाम भुगतने होंगे तब लौं।
आज उसीपर छोड़ सकें यदि हम अपने को,
कौन ताप फिर हमें तपाने को, तपने को ?
पर इसका यह अर्थ नहीं, कुछ भी न करें हम,
पार लगें या डूब जायँ, तब भी न तरें हम।
दी है उसने हमें शक्तियाँ ज्ञान-कर्म की,
जिनसे हम कर जायँ साधनाएँ स्वधर्म की।
देह उसीके और उसीके मर्म हमारे,
गेह उसीके और उसीके कर्म हमारे।

होंगे फिर सुख-दुःख हमारे भला कहाँ से ?
गत होंगे सब वहीं, समागत हुए जहाँ से।
हम वह हों, हम वही ब्रह्म हों, पर हम-हम क्या ?
हम उसके, वह स्वयं हमारा, इतना कम क्या ?
हम एकाकी और अनाथ नहीं इस जग में,
साथी एक समर्थ हमारा है पग-पग में।
अपने यम को यही हमारा उत्तर होगा,
'जो अपना था वही जगत में हमने भोगा।
अब जो तुझसे प्राप्य, वही लेने आये हैं,
जो निज प्रभु को देय, उसे देने आये हैं।'
हमें दैव ने दंड दिया, दयनीय न जाना,
उसके आगे यही मान अपना मनमाना।
लेना पड़ा न दान और ऋण हमें नियति से,
दिन उलटे हों, किन्तु चलें हम सीधी गति से।

प्रसव-वेदना तुम्हें इष्ट थी, तुमने पाई,
पर अपनी यह व्यथा आप प्रभु के मनभाई!

अर्पण कर दो इसे उसीके पद - पद्मों में,
रह सकती यह कहाँ हमारे लघु सद्मों में?
जिसने गोड़ा हमें, उसीको चलो, गुहारें,
आओ, दोनों एक साथ हम उसे जुहारें।
बच्चों के माँ - बाप कभी यदि उनको मारें,
तो भी बच्चे उन्हें छोड़कर किसे पुकारें?

उस दाता ने बार - बार चुन फूल दिया है,
लेकर हमने उसे हृदय से लगा लिया है।
पर जो उष्ण-स्पर्श हमारा उसने पाया,
सह न सका वह उसे तनिक, में ही मुरझाया।
इसी बीच यह लगा दिया उसने उपवन ही,
खिले हमारे आसपास हैं आज सुमन ही।
हरियाली में श्वेत, अरुण, पीले या नीले,
रस से हँसते हुए, ओस से गीले - गीले।
वह साक्षी है, प्यार इन्हें भी करते हैं हम,
पर निज पाप-स्पर्श सोचकर डरते हैं हम।

बार बार हम सिद्ध हो चुके यहाँ अभागी,
भोले-भोले नहीं जानते ये अनुरागी।
पर हम तो अनजान नहीं निज सन्तापों से,
यद्यपि परिचित नहीं आप अपने पापों से।
जान मानकर किन्तु इन्हें किस भाँति चुनें हम ?
और न कैसे चुनें, कहे कोई कि सुनें हम।
हम इनमें ही रहें किन्तु कुछ इन्हें बचाकर,
खिल-खिल खेला करें सभी ये रंग रचाकर।
और, समय पर फलें, देखकर बलि जावें हम,
मुदित झरोखे बैठ उदित गौरव पावें हम।"

अर्द्ध रात्रि है, असित वितान तना है ऊपर,
अन्धकार में पड़ी चेतना जड़-सी भू पर।
बरस चुकी थी आग, बरसता था अब पानी,
देता है जो अनल, वही तो जल का दानी !

अग्नि - दाह, भूकम्प और दिवसों की मारी,
खड़ी आज भी वही बड़ी-सी एक अटारी।

दीवारों में पड़ी दरारें, दरको डाटें,
पड़ी उसीमें आज दुःखियों की दो खाटें।
कहाँ तीसरी खाट ? न हो वह उड़नखटोला,
बैठ उसीपर उड़ा न हो वह चंचल चोला !
लम्बी - लम्बी साँस ले रहे दम्पति ऐसे,
गये हुओं का गन्ध वहाँ अब भी हो जैसे !
रोती - हँसती हुई घटा छाई है काली,
सभी खिड़कियाँ खुली, बयार झकोरोंवाली।
आती है बौछार, दीप दबका - सा बैठा,
बाहर भीतर आज तिमिर घर में घुस पैठा।

"अरे, देख तू, यहाँ रही यह तेरी मैया,"
रोता था नर—"कहाँ गया रे राजा भैया !"
"तुम मत रोओ" नेत्र पोंछ कहती थी नारी—
"तुम तम रोओ", गूँज रही थी अटल अटारी !

१

कैसे तजूँ तुझे मैं शोक !
आ जा, आसन मार बैठ जा, मेरा उर है तेरा ओक।

अवसर जहाँ हर्ष लाता है,
विभुवर मुझे भूल जाता है।
पर जैसे ही तू आता है,
पाता हूँ उसका आलोक।
कैसे तजूँ तुझे मैं शोक !

जिससे अपने प्रभु को पाऊँ,
क्यों न उसे मैं गले लगाऊँ ?
आ रोदन, आ, तुझको पाऊँ,
धैर्य, परे हट, मुझे न रोक।
कैसे तजूँ तुझे मैं शोक !

२

मेरे करुणा-कंज ! खिलो,
मेरे शोक सलिल के शतदल !
तुम प्रभु-पद-तल, मुझे मिलो।

सौरभ-लाभ-हेतु ही जी लूँ,
दो तो मादक मधु भी पी लूँ।
रोम-हर्ष-से कण्टक भी लूँ,
फूल बने फल - भार, झिलो।
मेरे करुणा-कंज ! खिलो।

३

न आ, न आ तू, मैं ही आऊँ,
नहीं प्रार्थना में, प्रयत्न में प्रभो, तुझे मैं पाऊँ।

न छू, अशुचि हूँ मैं, शुचि होऊँ,
काटूँ क्यों न आप जो बोऊँ?
खोजूँ स्वयं उसे जो खोऊँ,
सँभलूँ, ठोकर खाऊँ।
न आ, न आ तू, मैं ही आऊँ।

तेरे नियम क्यों न मैं मानूँ?
अनुभव से उनको पहचानूँ।
जीवन इतना ही क्यों जानूँ?
जूझ विजय वर लाऊँ।
न आ, न आ तू, मैं ही आऊँ।

क्या मैं माँग दया की भिक्षा,
तजूँ न्याय की तेरी शिक्षा?
किसे रुचेगी यह आमिक्षा?–
कितने ही गुण गाऊँ,
न आ, न आ तू, मैं ही आऊँ।

करे नियति क्यों मेरा लंघन?
नहीं याचना-वस्तु मुक्ति-धन।
मेरा ही माना है बन्धन,
छूटूँ वा बँध जाऊँ!
न आ, न आ तू, मैं ही आऊँ।

४

तू वा और कोई क्या कहेगा वह बात हरे,
आप मैं पुकार उठता हूँ अरे, क्या किया ?
किन्तु जो हुआ सो हुआ, अब तो उपाय नहीं,
विषयों का विष जो पिया है सो पिया-पिया ।
मरता हूँ, मरने से डरता नहीं हूँ, यही
सोचा करता हूँ, यहाँ जीकर भी क्या जिया ?
तो भी नाथ, तनु ने दिया है, लिया मन ने है
आप इस जीव ने किसीका क्या लिया-दिया !

५

मैंने अश्रु-हार क्यों पहना ?
कौन है इन तेरों का गहना ?

ऽ निज-पर-गति को ,
है अपनी मति को ,
गता है, पर दूँ किसे उलहना ?
मैंने अश्रु-हार क्यों पहना ?

६

व्यापी हरे, तुझे ही तेरी
वह दुरत्यया माया,
मुझको मार-मार अपने को
तू मनवाने आया!
मरता क्या न प्रेम से ही मैं,
तूने द्वेष दिखाया,
जहाँ काम होता मधु लेकर
यह माहुर क्यों लाया!
कैसे मार्ग तरूँ मैं कह, जब
मुझमें है भय छाया?
मन तो विद्रोही है मेरा,
करे क्यों न कुछ काया।
'है' के साथ 'नहीं' भी तो है,
पाया और न पाया,
अरे, परे रह तू दोनों से,
बन मेरा मनभाया।

७

मान लिया मैं हारा,
पर तूने मारा सो मारा,
मैंने भी मन मारा।
बार-बार तेरे प्रहार पर
वज्र विश्व ने वारा,
पर मेरे सहने में निकली
नव जीवन की धारा।
मुझे हार की लाज, जीत का
श्रेय तुझे है सारा,
पर स्वतन्त्र! किसको लजायगी
इस बन्दी की कारा?

८

अब तो हँस दे, ले, मैं रोया !
यह न पूछ हे मेरे निर्मम, मैंने क्या कुछ खोया ?

आँसू नहीं, रतन ये मेरे,
कुन्दन बने पीत पट तेरे,
उठ आया हूँ बड़े सबेरे,
रात न सुख से सोया।
अब तो हँस दे, ले, मैं रोया।

तुझे हँसाकर जैसे - तैसे,
मेरे अश्रु सफल हों ऐसे,
हिम-कण तरणि-किरण से जैसे,
अहा अरुण वह कोया !
अब तो हँस दे, ले, मैं रोया।

ओ मेरे नीले, ओ काले,
फिर भी इस उर के उजियाले।
ले, इन तारों को चमका ले,
तब तो इन्हें सँजोया।
अब तो हँस दे, ले, मैं रोया!

तेरा पाद्य इन्हींका पानी,
बात आज यह मैंने जानी,
आ तो फिर हे मेरे मानी!
मैंने यह घर धोया।
अब तो हँस दे, ले, मैं रोया!

गोड़ा तूने, भूल न जाना,
अपने इसी खेल में आना।
बीज मोतियों का मनमाना,
भर भर मैंने बोया।
अब तो हँस दे, ले, मैं रोया!

९

हो सुकाल - दुष्काल भले ही,
काल परन्तु अकाल न हो,
हरे! मरण है ही जीवन में,
पर जीवन जंजाल न हो।

ऊँचा रक्खा जा न सके जो,
अच्छा है, वह भाल न हो,
एक वार करवाल न भी हो,
किन्तु मरण यदि ढाल न हो।

छिन्न-दल

कमल हो न हो, किन्तु न जल हो,
ऐसा कोई ताल न हो,
न हों फूल फल दल भी जिसमें,
ऐसी कोई डाल न हो।

व्यर्थ बड़े घर का होना है
जिसमें छोटा बाल न हो,
रत्नों का भाण्डार व्यर्थ है
यदि माई का लाल न हो।

लय को बाँधे रहे कौन, यदि
उसके सम में ताल न हो,
पके ज्ञान का सुफल कहाँ, यदि
यहाँ मोह का पाल न हो।

१०

दुग्ध भिक्षा दी तुमने नाथ !
र इस प्यासे का मुहँ झुलसा पीने के ही साथ।

अन्य पात्र तुम बढ़ा रहे हो मेरी ओर उदार,
किन्तु दूध का जला भला मैं डरूँ क्यों न इस बार ?
आप रुकता है मेरा हाथ।
दुग्ध भिक्षा दी तुमने नाथ !

हाथ नहीं अब पैर बढ़ाकर पूरो मेरी चाह,
मिटे उन्हीं पद्मों के मधु से इन अधरों का दाह।
वही रस है मेरा प्रिय पाथ।
दुग्ध भिक्षा दी तुमने नाथ !

११

मथा जाय मेरा भव-सागर,

तेरे लिए रहा मेरे प्रभु, इसका अमृत उजागर।

पर विष निकल रहा जो इससे,

जला जा रहा जीवन जिससे,

'ले लो इसे', कहूँ मैं किससे?

ओ निर्णायक नागर!

मथा जाय मेरा भव-सागर।

१२

सिर माथे तेरा दृढ़ दण्ड,
न्यायी, कैसे कहूँ तुझे मैं निर्मम परुष प्रचण्ड?

देख देख मेरी गति रुद्ध,
क्या सिद्धार्थ न होंगे बुद्ध?
स्वयं मैं न हूँगा क्या शुद्ध,
करके प्रायश्चित्त अखण्ड?
सिर माथे तेरा दृढ़ दण्ड!

१३

क्या माँगूँ मैं तुझसे ?
हरे ! इन्द्रियों के दीपक ही रहे अरे, ये बुझ-से ,

दृष्टि-निम्नगा, अश्रु-अँधेरी ,
बन सकती है यमुना मेरी ,
मिले गिरा गंगा यदि तेरी ,
तू कुछ कह दे मुझसे ।
क्या माँगूँ मैं तुझसे ?

१४

क्षमा न कर तू मेरे पाप,
इतना ही कर, काट सकूँ मैं उनको अपने आप।

दिव की वस्तु दया, क्षोणी पर रहे न्याय की छाप,
पक्षपात करके न बिगाड़ें बच्चों को माँ-बाप।

पड़ें न प्रभु! तेरे कानों में मेरे व्यग्र विलाप,
धो डालें पहले ये आँखें अपने कलुष-कलाप।

वर रहने दे, पूरे हो लें अनजाने अभिशाप,
शुद्ध स्वर्ण-सा पड़ूँ पदों में तरकर तीनों ताप।

श्री मैथिलीशरण गुप्त लिखित—काव्य

जय भारत	७॥)	युद्ध	॥।)
साकेत	५)	चन्द्रहास	१॥)
गुरुकुल	३)	तिलोत्तमा	१॥)
यशोधरा	१॥)	अनघ	१।)
द्वापर	३)	किसान	॥)
सिद्धराज	१।)	शकुन्तला	॥)
हिन्दू	२॥)	नहुष	॥=)
भारत-भारती	२)	विश्व-वेदना	॥)
जयद्रथ-वध	॥।)	काबा और कर्बला	१।)
झंकार	१॥)	कुणाल-गीत	१॥)
पत्रावली	।=)	अर्जन और विसर्जन	।=)
वक-संहार	॥)	वैतालिक	।=)
वन-वैभव	॥)	गुरु तेगबहादुर	।=)
सैरन्ध्री	॥)	शक्ति	।=)
पञ्चवटी	॥।)	रङ्ग में भङ्ग	।=)
अजित	१॥)	विकट भट	।)
हिडिम्बा	॥।)	पृथिवीपुत्र	॥।)
अञ्जलि और अर्घ्य	॥।)	भूमि-भाग	।)
प्रदक्षिणा	॥=)	राजा-प्रजा	।)
लीला	२)	रत्नावली	१।)